हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान

परशुराम चतुर्वेदी

प्रकाशक
यशोधर मोदी,
मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
हीराबाग, गिरगाँव
बम्बई–४

प्रथम संस्करण
जून, १९६२

तीन रुपया मात्र

मुद्रक
लीडर प्रेस,
प्रयाग

प्रस्तावना

इस पुस्तक में मेरे कुछ वे निबंध संगृहीत हैं जिनका सम्बंध हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानो से है। ऐसी रचनाओं का निर्माण-कार्य न केवल उत्तरी भारत की अवधी भाषा में हुआ है, प्रत्युत उनकी एक विशिष्ट शैली के उदाहरण दक्खिनी हिंदी में भी पाये जाते हैं और उनकी संख्या कम नहीं है। प्रस्तुत संग्रह के अंतर्गत इन दोनों प्रकार के प्रेमाख्यानों के विषय में प्रकट किये गए मेरे वे विचार मिल सकते हैं जो उनके अधिकतर तुलनात्मक अध्ययन पर आश्रित है। मेरा यह प्रयास किसी वैसी 'वैज्ञानिक पद्धति' का अनुसरण नहीं करता जिसका प्रयोग अनुसंधान-विषयक प्रबंधों के लिए अपेक्षित समझा जा सकता है, न इसके फलस्वरूप इन निबंधो को कोई वैसा सुव्यवस्थित रूप ही मिल पाया है। इनमें एक से अधिक स्थल ऐसे भी मिलेंगे जहाँ पुनरुक्ति हो गई है अथवा जहाँ क्रम विपर्यय का दोष तक बड़ी आसानी के साथ निर्दिष्ट कर दिया जा सकता है। परंतु, इन्हे पृथक्-पृथक् और स्वतंत्र रूप में पढ़ने पर वैसी त्रुटि क्षम्य मानी जा सकती है तथा कहीं-कही तो कदाचित् उसके विषय में कोई आपत्ति भी नहीं की जा सकती। प्रत्येक निबंध अलग है और उसको लिखते समय अपनाया गया दृष्टिकोण भी बहुत कुछ अलग ठहराया जा सकता है। हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों की चर्चा करते समय, स्वभावतः उन कतिपय रचनाओं का भी प्रसंग आ गया है जो अन्य भाषाओ में निर्मित हैं तथा जिनके साथ इनका कुछ साम्य भी सिद्ध किया जा सकता है। इसके सिवाय, इनके उद्भव एवं विकास का प्रश्न छिड़ जाने पर उन प्रेमगाथाओं का भी उल्लेख कर देना पड़ता है जिन्हे 'असूफ़ी' का नाम दिया जा सकता है। परंतु किसी भी दशा में, केवल उन कतिपय चुनी हुई विशिष्ट रचनाओ पर ही दृष्टि डाली गई है जिन्हे प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

संगृहीत निबंधो को लिखते समय विभिन्न मतों अथवा सामग्रियों की भी ओर संकेत करना पड़ा है और उनका निर्देश यथास्थल कर दिया गया है। उन्हें समय पर प्रस्तुत करने वाले अपने अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का मैं इस बार भी पूर्ववत् ऋणी हूँ।

—लेखक

अनुक्रम

भूमिका

हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों का विषय, प्रारंभ से ही, लोककथाओं जैसा रहते आने के कारण, इन्हें 'साहित्यिक लोकगाथा' मान लेने की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है। तदनुसार, इसके लिए इनके अंतर्गत अनेक उपयुक्त लक्षण भी निर्दिष्ट किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि मुल्ला दाऊद से लेकर ईसवी सन् की बीसवीं शताब्दी के कवि नसीर तक ने अपनी-अपनी कृतियों के लिए या तो उन लोककहानियो को चुना है जो उनके समय में प्रचलित रहती आई हैं और जिन्हें उनके लोकसाहित्य का अंग बन आने के कारण, लोक-मानस की सृष्टि तक भी कहा जा सकता है अथवा उन्होने ऐसी किसी कहानी का केवल मूलसूत्र ग्रहण कर लिया है या उसके ढाँचे मात्र का उपयोग किया है या उसकी केवल वर्णन-शैली का ही अनुसरण कर दिया है। ऐसी प्रत्येक दशा में, उन्होंने इस बात की ओर प्रायः बराबर ध्यान रखा है कि उसे कोई न कोई लोकानुमोदित रूप ही प्रदान किया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी रचनाओं को प्रस्तुत करते समय, उन्होने अपनी कल्पना का भी न्यूनाधिक प्रयोग अवश्य किया होगा और कम से कम उनके पात्रों तथा उनके स्थानों का नामनिर्देश करते समय तो उन्होने बहुत कुछ स्वतंत्रता से भी काम लिया होगा। परंतु इसके कारण उनमें कोई विशेष अंतर नहीं लक्षित होता और न केवल उतने के ही आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि उनमें कोई नवीनता आ गई है। विभिन्न कथारूढ़ियों का समावेश लगभग पहले जैसा ही होता चला जाता है, चमत्कारपूर्ण प्रसंगो को प्रायः पूर्ववत् स्थान मिलता आता है, कई अंधविश्वासों को लगभग उसी प्रकार उदाहृत किया जाता है तथा ऐसी अतिप्राकृतिक बातों का विशद वर्णन भी होता आता है जिन्हें केवल जनसाधारण में ही प्रश्रय मिल सकता है। इसके सिवाय उनके द्वारा किया गया नायकों के असीम साहस एवं ऐश्वर्य का प्रदर्शन, नायिकाओं के अनुपम सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तथा विविध घटनाओं

के वैचित्र्यपूर्ण विवरण भी इस वात की ही ओर संकेत करते जान पड़ते हैं। अतएव हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम वैसी उक्त साहित्यिक लोकगाथा के वास्तविक स्वरूप के विषय में भी कुछ विचार कर लें।

'लोकगाथा' शब्द का प्रयोग हमारे यहाँ अधिकतर अंग्रेजी शब्द बैलेड (Ballad) के स्थान पर किया जाता आया है जिसका अर्थ किसी ऐसे काव्यरूप का होता है जिसमें कोई सरल कथा, केवल साधारण छंदों द्वारा कह दी गई रहा करती है। ऐसी रचनाएँ प्रायः छोटी-छोटी हुआ करती हैं। इनमें कथात्मकता के साथ-साथ गीतात्मकता भी पायी जाती है। साधारणतः ऐसा भी देखा जाता है कि इनका प्रचार वहुधा मौखिक रूप में ही होता चला आया है। वास्तव में ऐसी रचनाएँ हमें उस प्राचीन कहानी-साहित्य का स्मरण दिलाती हैं जो हमारे मानव समाज की प्रारंभिक दशा में प्रचलित रहा होगा। ऐसी लोकगाथाओं के मूल रचयिताओं का प्रायः कभी पता नहीं चला करता और ये इसीलिए लोकमानस की उपज तक ठहरा दी जाती हैं। किंतु इस सम्बंध में यह अनुमान भी किया जा सकता है कि ऐसी रचनाओं का निर्माण पीछे कतिपय लोकप्रिय कवियों द्वारा भी किया जाने लगा होगा। कभी-कभी किसी एक ही कथा का रूपान्तर देशकालानुसार, भिन्न-भिन्न प्रकार से होते आने के कारण, उसकी अनेक वातें प्रायः घटती-वढ़ती भी चली गई होगी। यदि उसकी रचना कभी किन्हीं दरवारी कवियों द्वारा होने लगी होगी तो उसमें स्वभावतः किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के नाम भी जुड़ जाते रहे होंगे। इसके सिवाय, अपने रचयिता कवियो के प्रमुख उद्देश्यो के आधार पर भी, ऐसी रचनाओ में कुछ न कुछ अन्तर का आ जाना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए, यदि उनका अभीष्ट कभी किसी के शौर्य को प्रधानता देने का रहता होगा तो उनका रूप किसी 'वीरगाथा' का हो जाता होगा। यदि किसी के प्रेमी हृदय का परिचय देने का रहता होगा तो वह 'प्रेमगाथा' वन जाती रही होगी। इसी प्रकार, यदि किसी स्त्री के सतीत्व को महत्व देने का उद्देश्य रहता होगा तो वह 'सतीगाथा' तथा यदि केवल भाग्य के फेर का प्रभाव दरसाना रहता होगा तो इस प्रकार की रचना किसी 'नियतिगाथा' का रूप ग्रहण कर लेती होगी। परंतु फिर इसके कारण, उनके सामान्य काव्य-

रूप में भी कोई विशेष अन्तर नहीं आ जाता रहा होगा। उनका प्रचार अधिकतर जनसाधारण में ही होते आने के कारण, उनमें सदा केवल वैसे ही प्रसंगों का समावेश किया जाता रहा होगा जिनकी ऊपर चर्चा की जा चुकी है। साहित्यिक लोकगाथा (Literary Ballad) का नाम केवल इसी प्रकार की लोकगाथाओं को दिया जाता आया है।

परंतु ऐसी दशा में, यह आपत्ति की जा सकती है कि यदि 'लोकगाथा' शब्द को हम अंग्रेजी शब्द 'वैलेड' का अर्थबोधक मानते हैं तो फिर इसके लक्षणों में हमें उसके उन लघुता, सरलता और गेयत्व जैसे गुणों की भी गणना करनी चाहिए जो उसकी विशेषता समझे जाते हैं। यदि हम ऐसा मान कर चलते हैं तो इसका प्रयोग कभी कम से कम, किसी सूफी प्रेमगाथा के लिए भी नहीं किया जा सकता। इन रचनाओं में हमें कभी आकार-लाघव की ओर यत्न किया गया नहीं दीख पड़ता, न वाह्य प्रसंगों की वृद्धि में कमी लाकर इनमें जटिलता न आने देने की कोई चेष्टा ही की गई जान पड़ती है, प्रत्युत कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि यहाँ उसके विपरीत प्रयास तक भी किया गया है। इसलिए, 'वैलेड' शब्द का अर्थ हिंदी में व्यक्त करने के लिए हम यदि चाहें तो 'गाथागीत' वा किसी अन्य ऐसे शब्द का व्यवहार कर सकते हैं। इसके लिए हिंदी का 'पंवारा' शब्द भी उपयुक्त नहीं ठहरता, क्योंकि उसके साथ जो किसी 'विस्तार' का भी अर्थ जुड़ा हुआ है वह 'वैलेड' के विरुद्ध जा सकता है। इस 'पंवारा' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'प्रवाद' से वतलायी जाती है जिसका अभिप्राय लोकापवाद, वातचीत, काल्पनिक कथा वा पौराणिक कथा आदि के रूपों में निर्दिष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार, यह 'वैलेड' की अपेक्षा 'लोकगाथा' का ही कहीं अधिक समानार्थक सिद्ध किया जा सकता है। मंझन कवि की मधुमालती' में जहाँ उसके नायक मनोहर द्वारा अपनी प्रेमपात्री के प्रति कहलाया गया है कि "तुम्हारा रूप और मेरा विरह-दुख ये दोनों देश-देशान्तरों तक पहुँच कर पंवारा वन गए हैं अर्थात् इन दोनों के विषय में लंबी चर्चाएँ की जाने लगी हैं[1]" वहाँ पर

१ "रूप तुम्हार मोर दुख वारा। देस देस गे भयऊ पवारा।"—मधुमालती (मित्र प्रकाशन, प्रयाग संस्करण, १९६१ ई०) पृ० २७३।

यह शब्द इसी अर्थ का सूचक हो सकता है। परंतु जहाँ तक पता चलता है, यह साधारणतः केवल किसी ऐसी लोकगाथा की ही ओर संकेत करता है जिसे उपर्युक्त गाथा की संज्ञा दी जाती है। इस दूसरे अर्थ में ही इसका प्रयोग मराठी भाषा के 'पोवाड़ा' तथा गुजराती के 'पंवाड़ो' जैसे शब्दो के रूपों में भी किया जाता हुआ दीख पड़ता है। इसका प्रयोग कभी किसी 'प्रेमगाथा' के लिए भी स्पष्ट रूप में किया गया नहीं सुना जाता। मनोहर के मुख से कहलाये गए उक्त वाक्य से भी, केवल इतना ही ध्वनित होता है कि दोनों प्रेमियो के सम्बंध में 'विस्तृत चर्चा' की जा रही है, उनकी सचमुच कोई 'प्रेमगाथा' भी नहीं कही जाती होगी। फलतः 'लोकगाथा' शब्द अंग्रेजी के 'वैलेड' शब्द से अधिक व्यापक अर्थ सूचित करता प्रतीत होता है और यह 'पंवारा' का भी ठीक समानार्थक नहीं जान पड़ता।

'लोकगाथा' कही जाने वाली रचनाओ का निर्माण स्वभावतः लोकभाषा में हुआ करता था जिस कारण इसके लोकतत्व की प्रतिष्ठा का होना और भी अधिक सरल था। इस दृष्टि से विचार करने पर यह अनुमान कर लेना असंगत न होगा कि इसका विकास कदाचित् उसी प्रकार हुआ होगा, जिस प्रकार 'रोमांस' कहे जाने वाले साहित्य का मध्यकालीन योरुप तथा विशेष कर फ्रांस देश में हुआ था। अंग्रेजी का 'रोमांस' (Romance) शब्द वस्तुतः प्राचीन फ्रेंच शब्द 'रोमाँ' (Romans) का प्रतिनिधित्व करता है जिसका मूल अर्थ फ्रेंच भाषा अथवा उसमें रचित उन कविताओं का होता था जिनका सम्बंध ऐतिहासिक वृत्तान्तो से रहा करता था। उस शब्द का प्रयोग अधिकतर उन देशो की भाषाओ के लिए भी होता आ रहा था जो मूलतः रोमन शासन के अधीन रहते आये थे तथा जिनकी उन भाषाओं का मूलस्रोत लैटिन भाषा रह चुकी थी। कहते हैं कि ईसवी सन् की १२वीं शताब्दी तक फ्रांस का पूरा साहित्य लैटिन भाषा में रचा जाता था। जब इसके लिए वहाँ की लोकभाषा का भी प्रयोग किया जाने लगा और इसका विषय ऐतिहासिक वृत्त बन गया तो ऐसी कृतियो को भी उक्त 'रोमाँ' का ही नाम दिया गया। इस शब्द का प्रयोग वहाँ पर संभवतः आजतक भी ऐसे साहित्य के ही लिए किया जाता है

जिसे अंग्रेजी में नावेल (Novel) तथा हिंदी में उपन्यास कहा करते हैं। इसका एक दूसरा रूपान्तरित शब्द रोमांस (Romance) आजकल सभी प्रकार के कल्पनाप्रधान साहित्य के लिए प्रयुक्त होने लगा है। वैसे रोमाँ-साहित्य के रचयिताओं की यह धारणा, कदाचित् आरंभ से ही रही कि जब तक इसमें किन्हीं रोचक प्रसंगों का भी समावेश नहीं किया जाता, इसे यथेष्ट लोकप्रियता नहीं मिल सकती। इसी कारण उन्होंने इसमें ऐतिहासिक वृत्तों के अतिरिक्त, पौराणिक कथाओ, लोकवार्ताओं तथा अंधविश्वासों को भी स्थान देना आरंभ किया जिसका एक परिणाम यह हुआ कि इनमें क्रमशः वृद्धि होती जाने के कारण, इनकी ऐतिहासिकता नष्ट होने लग गई[१]। वास्तव में, उस मध्यकालीन समाज के लिए इतिहास, पौराणिक कथा और काल्पनिक साहित्य में कोई अन्तर भी स्पष्ट नहीं था। यद्यपि वैसी रचनाओं की सारी बातें सदा स्वीकृत नहीं की जाती रहीं। इतना निश्चित है कि ऐसे प्रश्नों की ओर कभी किसी का ध्यान भी नहीं जाता रहा। इन कृतियों में अधिकतर दैव पर भरोसा प्रकट किया गया रहता था, साधुवृत्त लोगों जैसे कठोर जीवन को महत्व दिया जाता था। उनके जैसे चमत्कारों का उल्लेख किया जाता था और भक्तिभाव के प्रदर्शन के अधिक से अधिक आवेश से काम लिया जाता रहा[२]। इसी प्रकार उस युग के विशिष्ट पात्रों को ऐसे रूपों में चित्रित किया जाता था जिन्हें अंग्रेजी में Chivalrous अर्थात् शूरवीर कहा जाता है। ऐसी रचनाओ के नायकों का प्रेम सदा अपना कोई विशिष्ट आदर्श लिये रहता था जिसके अनुसार किसी विहित नियम का पालन भी आवश्यक था और जिसका सम्बंध न तो यौन-प्रवृत्ति मात्र से था, न जिसे उतना सेवामूलक ही कहा जा सकता था। उसमें ऐसी सारी बातों का ही एक मधुर सम्मिश्रण आ जाया करता था जिस कारण ए० बी० टेलर ने उसे Artificial literary love अर्थात् 'कृत्रिम साहित्यिक प्रेम' तक की संज्ञा दे डाली है

---

१. A. B. Taylor: An Introduction to Medieval Romance (London, 1930) pp 1-2.

२ Do, pp. 167-76.

तथा उसका एक विश्लेषणात्मक परिचय देने का भी यत्न किया है[1]। ऐसे रोमांसों के विषय में उस लेखक ने यह भी कहा है कि इनकी कोई परिभाषा नहीं दी जा सकती, प्रत्युत इनके विषय में केवल कुछ अनुभव मात्र किया जा सकता है। कुछ इस प्रकार समझ लिया जा सकता है कि इनके पात्र सर्वसाधारण के समाज से कहीं दूर के रहने वाले होंगे तथा उनके सम्बंध की घटनाएँ भी इस भौतिक जगत से कहीं ऊपर घटती रही होंगी।

हमें ऐसा लगता है कि हमारे यहाँ भी, उपर्युक्त साहित्यिक लोकगाथाओं की रचना करने वाले कुछ इसी प्रकार सोचते रहे होंगे, उनके पाठकों अथवा श्रोताओं की धारणा भी इससे अधिक भिन्न रहती होगी। इस सम्बंध में यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसे साहित्य का विषय अपने यहाँ ऐतिहासिक रहने की अपेक्षा अधिकतर पौराणिक वा कथात्मक मात्र होते आने के कारण, उनके लिए ऐसा करना और भी अधिक स्वाभाविक बन जाता रहा होगा। इसके सिवाय, जहाँ तक हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों के लिए कहा जा सकता है, इनके रचयिताओं के सामने तो संभवतः कोई ऐसा उपयुक्त आदर्श भी उपस्थित रहा होगा जिसका अनुसरण करना उन्हें स्वाभाविक जान पड़ता होगा। यह विशेषकर उनके समय तक प्रचलित उन विशिष्ट अपभ्रंश वा प्राकृत आख्यानों के रूप में रहा होगा जिनमें से कुछ की रचना का उद्देश्य धार्मिक प्रचार भी हो सकता था। सूफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओं का ढाँचा अधिकतर इन्हीं के अनुरूप खड़ा किया होगा। इन्हीं के आधार पर अनेक प्रचलित कथा-रूढ़ियों का भी उपयोग किया होगा जिस कारण, उनकी रचनाओं के अंतर्गत वे सारी बातें आप-से-आप आ गई होंगी जो इनके लिए सामान्य समझी जा सकती थीं। परंतु ऐसा करते समय, उनका ध्यान संभवतः उन फ़ारसी सूफ़ी प्रेमाख्यानों की ओर भी अवश्य आकृष्ट हुआ होगा जिनका निर्माण अधिकतर निज़ामी (मृ० सन् १२०३ ई०) के समय से होने लगा था और जिनकी कुछ बातों को अपने यहाँ समाविष्ट कर लेना उनके लिए स्वाभाविक भी था। उन्होने इनमें से किस ओर से कितना ग्रहण किया और उस

---

१. Do P 230

पर कहाँ तक अपनी कल्पना का प्रयोग किया ये वातें ऐसी हैं जिन पर अभी तक पूरा अनुसंधान नहीं किया जा सका है, न इस रोचक प्रश्न को अभी उचित महत्व प्रदान किया गया है। अतएव, अभी केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उत्तरी भारत के हिंदी सूफ़ी प्रेमाख्यानों के लिए कोई न कोई पूर्व प्रचलित भारतीय रचनादर्श वर्त्तमान रहने के कारण, इधर फ़ारसी-साहित्य का प्रभाव उतना नहीं पड़ सका जितना दक्खिनी हिंदी की ऐसी रचनाओं पर पड़ा।

परंतु इसका परिणाम भी केवल इसी रूप में लक्षित होता है कि दक्खिनी हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों का वाह्य रंगढंग उत्तरी भारत की ऐसी रचनाओं से वहुत कुछ भिन्न जान पड़ता है और भाषा-शैली काव्यरूप एवं छंदप्रयोग जैसी वातों में वे एक दूसरे के समान नहीं हैं। जहाँ तक वर्ण्य विषय का प्रश्न है तथा जहाँ तक दोनों के कवियों के मूल उद्देश्य के सम्वंध में कहा जा सकता है उनमें वहुत अधिक अन्तर नहीं है। दक्खिन वाले शामी संस्कृति और शामी आदर्शों द्वारा अवश्य अधिक प्रभावित है और उनमें कभी-कभी इस्लामी कट्टरता तक भी दीख पड़ने लगती है। किंतु अपनी रचनाओं के अंतर्गत लोकतत्व की प्रतिष्ठा करते समय, ये कभी उत्तर वालों से किसी प्रकार भिन्न नहीं जान पड़ते। ऐसी वातें इन दोनों के यहाँ न केवल भारत से, अपितु अरव एवं ईरान जैसे पश्चिमी देशों से भी ग्रहण कर ली जाती है और उनका यथास्थल उपयोग कर लिया जाता है। इनके यहाँ, यदि कभी-कभी प्राचीन वेदुइन अरवों के प्रेम की स्वच्छन्दता दीख पड़ती है तो उसके साथ ही ईरानी प्रेम की आध्यात्मिकता भी दृष्टिगोचर होती है और इन दोनों का संयोग अत्यन्त मनोरम रूप ग्रहण कर लिया करता है। इसके सिवाय, जव कभी ये किन्हीं निजंधरी कथाओं को लेते हैं अथवा उनका अधूरा तक भी प्रयोग करते हैं तो ये भरसक यही चाहते है कि उन्हें उनके मौलिक रूपो में ही चित्रित किया जाय तथा इसके द्वारा अपने पाठको में कौतूहल की वृद्धि की जाय। परंतु ये ऐसा ठीक एक ही प्रकार से नहीं कर पाते और 'सवरस' का रचयिता दक्खिनी कवि मुल्ला वजही जहाँ उसके पात्रो और घटनाओ के चित्रण में, उनके मूल आदर्शों के निकट वने रहने में विशेष सजगता प्रदर्शित करता है, वहाँ हंस जवाहर का उत्तरी कवि कासिमशाह अपनी इस रचना में ऐसा नहीं कर

पाता, प्रत्युत यह कहीं-कहीं वैसे वर्णनों पर भारतीय रीति-परंपराओं की छाप तक डालने लग जाता है। फिर भी यहाँ पर प्रश्न केवल यह नहीं है कि ऐसी रचनाओं का विषय कहाँ तक अपने मूल आधार का अनुसरण करता है अथवा किस मात्रा में वह मानव समाज के किसी स्तर विशेष का प्रतिनिधित्व करता वा उसके अनुकूल पड़ता है। यहाँ पर तो हमें यह देखना है कि कहाँ तक ऐसी रचनाओं में वैसा विषय स्वभावतः कोई न कोई ऐसा रूप ग्रहण कर लेता है जिसका आकार-प्रकार साधारण जनसमाज की मानसिक प्रयोगशाला में निर्मित कहा जा सकता है। इसी कारण, जिसका चित्रण साधारण लोककथाओं के अनुकूल भी पड़ सकता है। इस दृष्टि से देखने पर हमें ऐसा लगता है कि इन सूफी प्रेमाख्यानों को साहित्यिक लोकगाथा की कोटि में रखना कदाचित् अनुचित न कहा जायगा और इस बात को उक्त दोनों प्रकार की रचनाओं द्वारा प्रमाणित भी किया जा सकता है।

इस सम्बंध में यहाँ पर इतना और भी कहा जा सकता है कि मध्यकालीन योरुप के रोमांस-साहित्य का एक रूप जहाँ आज की ऐसी 'नावेल' कही जाने वाली रचनाओ में भी विकसित हो चुका है जिनका उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्य और यथार्थवादी का प्रतिपादन रहा करता है, वहाँ दूसरी ओर हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों का प्रतिनिधित्व करने वाली 'प्रेमदर्पण' नाम की आज से केवल ४५ वर्ष पूर्व निर्मित रचनाओं में भी हमें वैसी कोई बात स्पष्ट रूप में लक्षित नहीं होती, न यह किसी ऐसी ओर कोई संकेत करती ही जान पड़ती है। इसका कवि नसीर अपने लिए प्रसिद्ध नबी यूसुफ़ और उसकी प्रेमिका जुलेख़ा का कथानक चुनता है। उसका आरंभ करते समय, अन्य आराध्यों के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट करने के साथ, पौराणिक महापुरुष ख्वाजा खिज्र का उल्लेख करता है तथा ऐनुल अहदी नामक अपने पीर की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। इस दूसरे के सम्बंध में यहाँ तक भी कह डालता है कि "जिस पानी को वे फूंक देते थे वह केवड़े का जल बन जाया करता था।" वह ऐसे जल की एक बूंद का स्वयं अपने लिए भी प्राप्त होना वतलाता है तथा उसकी सुगंधि की स्मृति का बना रहना भी स्वीकार करता है। इस रचना के अंतर्गत कतिपय अन्य ऐसे आत्म-कथात्मक प्रसंग अवश्य आ गए

है जिनका रूप आधुनिक लग सकता है। यदि इसकी तुलना इसके सवा सौ वर्ष पहले, इसके विषय को ही लेकर लिखे गए शेख निसार कवि के प्रेमाख्यान 'यूसुफ जुलेखा' के साथ की जाय तो उस दशा में भी, कुछ न कुछ वैसा अन्तर सिद्ध किया जा सकता है, किंतु केवल उसके ही कारण, इसकी परंपरागत रचना-शैली में लक्षित होने वाले किसी स्पष्ट विकास का भी बोध नहीं हो पाता, प्रत्युत ऐसा लगता है कि अभी तक वही पुराना टकसाल काम देता चला जा रहा है जिसकी स्थापना इसके लगभग ६ सौ वर्ष पूर्व हुई होगी।

पता नहीं 'प्रेमदर्पण' के इधर भी कोई सूफी प्रेमाख्यान लिखा गया है वा नहीं। यदि किसी ऐसी रचना का निर्माण हुआ है तो उसका रूप कहाँ तक नवीन है अथवा किस मात्रा तक उसमें पाये जाने वाले किसी विकास-क्रम का अनमान किया जा सकता है। इसी प्रकार हमारे पास ऐसा कोई दूसरा साधन भी नहीं जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि ऐसी रचनाओं का भविष्य क्या हो सकता है। उपलब्ध सामग्री पर विचार करके इस विषय में, केवल इतना ही मत प्रकट किया जा सकता है जो इस साहित्य के मूल्यांकन से सम्वद्ध है तथा जिसके अंतर्गत इसके भावी मानव समाज के लिए किसी प्रकार उपयोगी सिद्ध होने वा न होने की वात भी आ जाती है। हिंदी भाषा में इसका निर्माण उस समय होने लगा था जव इसमें एक ओर जहाँ केवल फुटकल रचनाएँ प्रस्तुत की जा रही थीं, वहाँ दूसरी ओर यदि कोई प्रवंध-काव्य लिखा भी जा रहा था तो वह भी संभवतः या तो किसी पौराणिक ग्रन्थ का अनुवाद जैसा रहा करता था अथवा उन अपभ्रंश रचनाओं का अनुकरण मात्र था जिन्हें 'चरिउ' वा 'रासो' जैसे शीर्षकों के अंतर्गत गिनने की परंपरा चली आ रही है। इनमें से 'चरिउ' काव्यों में उनके नायकों के जीवन की घटनाएँ विस्तार के साथ दी जाती थीं। उनके वंश परिचय, वाल्यावस्था, तीर्थ-भ्रमण, शास्त्राभ्यास, शासनकार्य, सम्मान एवं देहात जैसे विषयों का समावेश करके, ग्रन्थ का उपसंहार दे दिया जाता था। किंतु रासो कहे जाने वाले ऐसे ग्रन्थो के अंतर्गत अधिकतर उन्हीं वातो की चर्चा की जाती थी जिनका उनके जीवन में विशेष महत्व था। इसके सिवाय, इन दोनों प्रकार की रचनाओ के अंग-विभाजन में भी कुछ अन्तर जान पड़ता था, क्योंकि प्रथम

श्रेणी की रचनाओं का विभाजन जहाँ सर्गों, संधियों एवं कांडों में किया गया पाया जाता था, वहाँ द्वितीय को उसी प्रकार, ठवणि, वाणि, आदि में विभक्त करते थे और कभी-कभी तो, इनकी अभिनेयता को भी दृष्टि में रखते हुए इनका विभाजन विभिन्न 'ढालों' में भी कर दिया करते थे। यहाँ पर उल्लेखनीय यह है कि श्री केशवराम शास्त्री नामक एक विद्वान गुजराती लेखक के अनुसार, बंध की दृष्टि से विचार करने पर, ऐसे वृहत्काव्यों के केवल दो ही प्रकार मिलते हैं जिनमें से एक कड़वा, मासा ढवणि वा ढालयुक्त गेय 'रास' काव्य है और दूसरा 'क्रमबद्ध पवाड़ो' है जिसमें मुख्यतया चौपाई हों और बीच-बीच में दूहा या क्वचित् अन्य छंद भी आ गए हों [१]।" जो बहुत कुछ हिंदी के उत्तरी सूफ़ी प्रेमाख्यानो सा भी लगता है। श्री शास्त्री ने अपनी एक पुस्तक में[२] गुजराती साहित्य के अंतर्गत 'लोक-कथानकों' की चर्चा करते समय, किसी भीम कवि की ऐसी रचना 'सदयवत्स कथा' तथा हीरानंद के 'विद्याविलास पवाड़ो' का भी परिचय दिया है जो दोनों मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' के समसामयिक जान पड़ते हैं। इनमें से प्रथम का रचनाकाल सं० १४६६ (सन् १४०९ ई०) दिया गया है और दूसरे का सं० १४८५ (सन् १४२८ ई०) है जो सन् १३७९ ई० के कुछ ही पीछे आते है। श्री शास्त्री ने इन दोनों के पहले विजय भद्र सूरि की रचना 'हंसराज बच्छराज चउपइ' (रचना-काल सं० १४११ = सन् १३८४ ई०) तथा असाइत नायक रचित 'हंसाउलि' (र० का० सं० १४१७ = १३६० ई०) की भी चर्चा की है जो 'कथासरित्सागर' की किसी कथा पर आधारित हैं।

हिंदी के इन सूफी प्रेमाख्यानों की रचना के पहले से ही कुछ कथा-रूढ़ियाँ प्रचलित थीं जिनका उपयोग अधिकतर लोकगाथाओं में होता आ रहा था और जिन्हें इनके पूर्ववर्ती रासो ग्रन्थों में भी स्थान मिलता आ रहा था। प्रसिद्ध चंद-

---

१. डॉ० दशरथ ओझा और डॉ० दशरथ शर्मा द्वारा संपादित . रास और रासान्वयी काव्य (वाराणसी, स० २०१६) के भूमिका भाग, पृ० २१ पर उद्धृत।

२ गुजराती साहित्यनु रेखादर्शन, खंड १ लो (अहमदाबाद, १९५१ ई०) पृ० ५६।

वरदायी की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के लिए कहा जाता है कि उसमें ऐसी कथा-रूढ़ियों का प्रवेश, उसके प्रारंभिक रूप की रचना के समय से भी होने लगा होगा, किंतु यह प्रवृत्ति पीछे क्रमशः और भी अधिक बढ़ती चली गई। इसी प्रकार ऐसे रासो-ग्रन्थों में जिन्हें उनके नायकों के शौर्य-प्रदर्शन के कारण, 'वीरगाथा' का नाम दिया जाता है, ऐसे अनेक प्रेम-प्रसंगों का भी समावेश किया जाने लगा जिनमें शृंगार रस की अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रा में रहा करती थी और जिन्हें, यदि मूल-ग्रन्थ से पृथक् करके कोई स्वतंत्र रूप दे दिया जाय तो एक साधारण 'प्रेमगाथा' का भी नाम दिया जा सकता है। इनमें प्रदर्शित प्रेमाकर्षण, विरह-वेदना, प्रेमपात्री के लिए किये गए यत्न, विभिन्न बाधाएँ तथा चामत्कारिक प्रसंग, आदि अनेक बातें ऐसी हैं जिनकी तुलना सूफ़ी प्रेमाख्यानो में पाये जाने वाले वैसे अनेक अंगों के साथ की जा सकती है। इसके सिवाय, जहाँ तक प्रचलित कथा-रूढ़ियों की बात है इनका समावेश हम उन रचनाओं में भी किया गया पाते हैं जिनका उद्देश्य, प्रत्यक्षतः जैनधर्म को विशेष महत्व देना जान पड़ता है और जिनमें प्रासंगिक रूप में प्रेमकथाएँ तक भी आ जाया करती है। उदाहरण के लिए "ब्रजभाषा के अद्यावधि प्राप्त ग्रन्थों में सबसे प्राचीन"[१] अग्रवाल कवि रचित प्रद्युम्न चरित (र० का० सं० १४११ = सन् १३५४ ई०) में जो हमें कथावस्तु मिलती है उसका आधार पौराणिक ठहराया जा सकता है, किंतु जिसमें उसके नायक के अपने बच-पन से ही माता-पिता से बिछुड़ जाने, उसके प्रति अनेक स्त्रियों के आकृष्ट होने, उसके विभिन्न साहसिक कार्य करने तथा अंत में विवाह करके घर वापस आने और बधाइयो के बजने आदि के प्रसंग कथा-रूढ़ियों से ही लगते है। ऐसी बातें सूफ़ी प्रेमाख्यानों में भी पायी जाती है और यहाँ उन्हें कभी-कभी बहुत विस्तार दे दिया गया दीख पड़ता है। 'प्रद्युम्न चरित' के नायक को श्रीकृष्ण एवं यादवों के विनाश का समाचार सुन कर जिनेन्द्र से दीक्षा लेना और कठिन तप करना पड़ता है और तब कहीं उसे कैवल्यपद की प्राप्ति हो पाती है यह अवश्य एक ऐसी बात है जो सूफ़ी कवियों की दृष्टि में अनावश्यक है।

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (वाराणसी १९५८ ई०) पृ० १४३।

हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में जो हमें प्रेम-साधना का उदाहरण मिलता है उसे सब किसी ने बहुत बड़ा महत्व दिया है और यह बात प्रायः सर्वसम्मत-सी समझी जाती है कि इनकी जैसी प्रेमाभक्ति का उत्कृष्ट रूप, कदाचित् अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए अनेक लेखकों की तो यह धारणा भी बन गई जान पड़ती है कि यदि भारतीय भक्ति-साधना के अंतर्गत इस प्रकार की कोई बात देखने में आती है तो वह संभवतः इसके ही आदर्श का अनुसरण करती होगी। परंतु, यदि हम भारतीय भक्ति के प्रेम-परक पक्ष पर विचार करते हुए उसके मूलस्रोत का पता लगाने का यत्न करते हैं तो हमारे लिए कोई ऐसा मत सहसा प्रकट कर देना तर्कसंगत नहीं जान पड़ता, न उस दशा में सूफी प्रेम के अंतर्गत हम वैसी कोई नवीनता ही देख पाते हैं। कम-से-कम वैष्णव भक्तों द्वारा कल्पित रासलीला की भावना तथा प्रमुख आडवारो की प्रेमाभक्ति (जिन दोनों के लिए सूफी-प्रेमभाव से प्राचीनतर सिद्ध करना कदाचित् बहुत कठिन भी नहीं समझा जा सकता) इस बात के समर्थन में प्रस्तुत की जा सकती है और इनके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि इस प्रकार की मनोवृत्ति यहाँ के लिए अपरिचित अवश्य नहीं रही होगी। इसके सिवाय जब हम, 'वृहदारण्यक' जैसी पुरानी उपनिषद् के अंतर्गत यह भी देखते हैं कि याज्ञवल्क्य के अनुसार, "स्वयं वह परमात्मा (अकेला) रममाण नहीं हुआ और इसी से एकाकी पुरुष रममाण नहीं होता, उसने दूसरे की इच्छा की। वह जिस प्रकार परस्पर आलिंगित कोई स्त्री और पुरुष होते हैं वैसे ही परिमाण वाला हो गया और उसने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर डाला[1]" इत्यादि तो हमें ऐसा लगता है कि वैसी 'रमणेच्छा" का कुछ संकेत यहाँ पर भी किया गया है तथा उक्त रासलीला की प्रक्रिया में इसकी पूरी अभिव्यक्ति भी मिल जाती है। रासलीला की भावना में हमें न

---

१ "स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स
द्वितीयमैच्छत् स । हैतावानास यथा
स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तो स इममेवात्मान
द्वेधापातयत्तत." इत्यादि प्रथम अध्याय,
चतुर्थ ब्राह्मण और तृतीय अंश ।

केवल क्रीड़ा एवं विनोद मात्र का ही अंश उपलब्ध होता है, प्रत्युत उसके साथ इसमें हमें उस विरहौत्सुक्य के भी दर्शन होते है जिसके कारण, श्रीकृष्ण के अकस्मात् अंर्ताहित हो जाने पर, उनकी प्रेमिका गोपियाँ उनका क्षणिक विरह भी सहन नहीं कर पातीं और सर्वथा अधीर और वावली वनकर इधर-उधर भटकने लग जाती हैं। उन्हें उस 'वेहोशी' का भी अवलंब नहीं मिल पाता जिसकी दशा में किसी प्रेमी वा प्रेमिका को लाकर उसे किंचित् अवकाश प्रदान करने की चेष्टा प्रायः सूफ़ी कवियों द्वारा की गई देखी जाती है। इसी प्रकार, यदि सूफ़ी कवियों के प्रेमी एवं प्रेमिकाओं का प्रेमभाव उनके किसी पूर्व कालीन मूल सम्वंध पर आश्रित माना जाता है तो यहाँ हमारी दृष्टि उपर्युक्त भारतीय धारणा की ओर चली जाती है जिसके अनुसार उन प्रेमिकाओं का प्रेमपात्र (परमात्मा श्रीकृष्ण) किसी दिन अकेला 'रममाण' न हो पाया होगा। इस कारण यहाँ पर भी 'दैवीपन' कम कठोर नहीं सिद्ध होता, न हमें यह उससे किसी प्रकार कम अनिवार्य ही लगता है। अतएव किसी वैष्णव की प्रेमाभक्ति भी जो रासलीला की भावना का आधार लेकर चलती है और उसकी मधुरोपासना में परिणत होती है, तत्वतः उस 'इश्क़ हक़ीक़ी' की ही कोटि की हो सकती है जो किसी सूफ़ी साधक के यहाँ इश्क मजाजी के माध्यम से आरंभ होकर अंत में पूर्ण विकास पाता है। प्रेमादर्श की यह स्थिति सहज और स्वाभाविक है और इसके लिए किसी वैवाहिक सम्वंध की योजना भी अपेक्षित नहीं। यहाँ न तो परकीया और स्वकीया के अन्तर का कोई प्रश्न उठा करता है, न जार एवं धर्मपति के वीच कोई भेदभाव ही रह जाता है।

जिस समय हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानो की रचना आरंभ हुई उस समय तक उनके रचयिताओं के लिए वैसी अनेक वातें प्रस्तुत की जा चुकी थीं जिनका उपयोग वे किसी न किसी रूप में वड़ी सरलता के साथ कर सकते थे। क्या कथावस्तु, क्या काव्यरूप, क्या रचना-शैली, और कथा-रूढ़ियों जैसी सामग्री इनमें से कदाचित् किसी के लिए भी उन्हें कोई सर्वथा नवीन मार्ग निर्मित करने की आवश्यकता नहीं थी, न उन्हे इसके लिए अधिक प्रयास ही करना पड़ा होगा। जहाँ तक ऐसी रचनाओ के लिए प्रचलित अवधी भाषा के प्रयोग की वात है हमें पता

है कि इस ओर भी कुछ-न-कुछ कार्य आरंभ हो चुका था। उनके लिए केवल इतना करना ही शेष था कि उस जनप्रिय माध्यम के द्वारा तथा यथासंभव पूर्वागत परंपराओ का ही अनुसरण करते हुए एक ऐसे साहित्य का निर्माण अपने हाथो में ले जो न केवल रोचक बन सके, प्रत्युत जिसके द्वारा उनका मत-सम्बंधी प्रचार कार्य भी अग्रसर किया जा सके। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें किसी पंडित-समाज की शरण लेनी नहीं थी, न किसी के साथ तर्क-वितर्क करने जाना था। वैसे लोगो के प्रति व्यवहार करने का काम तो उनके सहधर्मी एवं संरक्षक शासकों के सिपुर्द था जो चाहे प्रलोभन वा प्रताड़न द्वारा अपनी ओर से मनमानी भी कर सकते थे और जिनके ऊपर इसके विरुद्ध कोई अंकुश भी नहीं हो सकता था। परंतु सूफी कवियों का काम उनसे कई बातों में भिन्न समझा जा सकता था और वह किसी समझौते जैसा भी था। ये किसी ऐसे मत का परिचय देना चाहते थे जिसकी अनेक बातें सब किसी को प्रत्यक्षतः मान्य एवं स्वीकार योग्य लग सकती थी और जिनका मूल आधार एक मात्र परमात्मा तथा उसके प्रति स्वाभाविक प्रेमभाव होने के कारण उन्हें उसके अपनाने में कभी कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी। ऐसी दशा में इसके लिए किसी लोकगाथा को माध्यम बनाना सोने को सुगंधि पूर्ण रूप दे देना अथवा किसी अमृत जैसे अलभ्य पदार्थ को जन-सुलभ पात्रो में डालकर उसे सब कहीं वितरित कर देने के समान था जिसे कदाचित् सब किसी ने पसंद किया। अतएव इस प्रकार की रचना-शैली में जो नवीनता लक्षित होती है वह प्रधानतः इस रूप में ही निर्दिष्ट की जा सकती है कि इसके द्वारा गूढ़ आध्यात्मिक तत्व को भी सुबोध बना देने की चेष्टा की गई है तथा इसके साथ ही प्रेमतत्व के उस रूप का निरूपण भी किया गया है जिसके व्यापक क्षेत्र में एक बार प्रवेश पा जाने पर हमारे जीवन में कायाकल्प की दशा लायी जा सकती है तथा भूतल एवं स्वर्ग का भेदभाव तक दूर किया जा सकता है। इन प्रेमगाथाओं के माध्यम से सूफ़ियों का जन-संपर्क स्थापित करना बहुत सरल हो गया और इनकी रचना द्वारा हिंदी के लिए एक ऐसे साहित्य का सृजन भी आरंभ हो गया जिसने उसके वाङमय की समृद्धि में बहुत बड़ी सहायता की।

उत्तरी भारत के हिंदी सूफ़ी प्रेमाख्यान

कहते हैं कि 'सूफी' शब्द का प्रयोग, सर्वप्रथम शेख अबू हाशिम के लिए किया गया था जो मोसल नगर मे उत्पन्न हुए थे। ये शाम देश के कूफा नगर मे रहा करते थे और इन्होंने ईराक देश के 'रमला' नामक स्थान मे अपना कोई मठ भी स्थापित किया था। परतु इनके जन्म अथवा मरण-सम्बधी तिथियो का हमे कोई निश्चित पता नही चलता, केवल इतना ज्ञात होता है कि ये ईसवी सन् की नवी शताब्दी मे वर्त्तमान थे। मौलाना जामी इनके देहान्त का हि० १५० अर्थात् ७६७ ई० मे ही हो जाना बतलाते है।[1] यह अनुमान भी किया जाता है कि तब से प्राय: ५० वर्षो मे, यह शब्द बहुत प्रचलित भी हो गया होगा। किंतु "कुशैरी (मृ० सन् ९८८ ई०) तथा शहाबुद्दीन सुहर्वर्दी (मृ० सन् १२३४ ई०) के अनुसार 'सूफी' शब्द पहले पहल, हिजरी सन् के द्वितीय चरण के अत मे, सन् ८१५ ई० के अनन्तर प्रयोग मे आया होगा और उनका यह कथन इस बात से भी प्रमाणित होता है कि इसे न तो 'हदीश' के सग्रह-ग्रंथ 'सित्त.' में कोई स्थान मिला है जो नवीं और दसवी शताब्दी मे प्रस्तुत हुआ था, न यह उस प्रसिद्ध अरबी कोश 'कामूल' मे ही मिलता है जो सन् १४१४ ई० मे तैयार किया गया था।[2]" क्योकि इन जैसी पुस्तको तक में इसका न पाया जाना कम से कम इसकी अप्रसिद्धि का ही सूचक हो सकता है। इस समय तक इस्लाम धर्म द्वारा प्रभावित देशो के शासक उमैया वश वालो का शासन-काल समाप्त हो चुका था और तब तक अब्बास वशी लोगों का प्रभुत्व भी स्थापित हो गया था जिनके समय मे उस धर्म का प्रवेश इधर ईराक तथा उसके आगे तक हो गया।

---

१ सूफी संत मिर्जा, मजहर जानजाना, अलीगढ़ सं० २०१७।

2. Dr. John A. Subhan: Sufism, Its Saints and Shrines (Lucknow, 1938) p. 7.

'सूफी' शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ अधिकतर 'सूफ' अर्थात् "ऊन से बने मोटे वस्त्र धारण करने वाला" समझा जाता है। ऐसे लोग उन दिनो बहुधा, ऐश्वर्य एव भोगविलास से सर्वथा दूर बने रहकर, सीधा-सादा जीवन व्यतीन करते थे तथा प्राय आध्यात्मिक साधनाओ मे भी लगे रहते थे और इस प्रकार के व्यक्तियो मे से कुछ इसके पहले भी हो चुके थे। तदनुसार प्रारभिक युग के सूफियो में अबू हसन बसराबी का नाम भी बडी श्रद्धा के साथ लिया जाता है जिनका देहान्त सन् ७२८ ई० मे हुआ था और जिन्हे, इनके प्रशसक खलीफा अली के समान चरित्रवान् बतलाते है। उन्ही मे बसरा निवासिनी राबिया की भी गणना की जाती है जिसका मृत्युकाल सन् ८०२ ई० है और जो एक अत्यन्त दरिद्र परिवार की होती हुई भी, अपने सासारिक सुखो के लिए स्वय परमेश्वर तक से भी कुछ माँगने मे लज्जा का अनुभव किया करती थी। अपने इष्टदेव के प्रति वह 'तवक्कुल' अथवा 'पूर्ण निर्भरता' का भाव सदा बनाये रहा करती थी और उसे एक क्षण के लिए भी न भूलती हुई, उसकी प्रार्थना मे सदा निरत रहना भी पसन्द करती थी। इस प्रकार उस युग के सूफियो की विशेषता उनकी एकान्त-प्रियता, ईश्वरा-धना तथा ध्यान जनित आनन्द मे सदा मग्न रहने मे निहित कही जा सकती है। वे लोग न तो किसी बात का प्रचार करना चाहते थे, न उन्हे आत्मप्रदर्शन ही पसन्द था। उनकी वृत्ति प्रधानत अन्तर्मुखी थी और उनके लिए कहा जा सकता है कि वे अधिक से अधिक इस्लाम धर्म की मौलिक भावनाओ द्वारा प्रभावित भी थे।

परतु, ईसवी सन् की नवी शताब्दी के प्राय प्रथम चरण से ही, ऐसे सूफियो की मनोवृत्ति मे बहुत परिवर्तन दिखलायी पडने लगा। इस समय तक अब्बास वश वाले मुस्लिम शासको ने अपनी राजधानी दमिश्क से हटाकर बगदाद मे स्थापित कर ली थी और उनके प्रसिद्ध मंत्री बरमको द्वारा प्रोत्साहन पाकर बौद्ध एव हिन्दू विचारधाराओ को समुचित प्रश्रय भी मिलने लगा था। उनके मामू तथा हारूँ रशीद नामक बादशाहो ने अपने यहाँ विभिन्न मतावलम्बी लोगो को निमत्रित कर उनसे विचार-विनिमय कराया तथा उनके विशिष्ट ग्रन्थो के अनुसार अनुवाद भी कराये जिसका एक परिणाम यह हुआ कि उस काल के सूफी लोगो में भी दार्श-

निक प्रश्नो पर तर्क-वितर्क करने की प्रवृत्ति जग उठी । तदनुसार, तात्कालीन ईरानी, ईसाई धर्मी, नव अफलातूनी एव भारतीय विचारधाराओ के सम्मिश्रण और समन्वय के फलस्वरूप, सूफी साधको का एक अपना पृथक् मत, 'सूफीमत' के नाम से विकसित हो चला । उसके अन्तर्गत अनेक ऐसी बातो का भी समावेश होने लगा जो मूल इस्लाम धर्म के प्रचलित सिद्धान्तो के ठीक अनुकूल नही समझी जा सकती थी । इस समय के सूफी जुलनून मिस्री (मृ० सन् ८५९ ई०) ने यूनानी चिन्तन-शैली के अनुसार बुद्धिवादी व्याख्या की प्रणाली आरभ की, अबू यजीजुद्दीन बिस्तामी बायजीद (मृ० ८७५ ई०) ने कदाचित् सर्वप्रथम, बौद्धो के 'निर्वाण' की भाति 'फना' की धारणा प्रचलित की और हल्लाज़ वा मसूर (मृ० सन् ९२२ ई०) ने अपनी 'सर्वात्मवाद' के प्रति घोर आस्था द्वारा भारतीय वेदान्त दर्शन के अद्वैत सिद्धान्त की ओर भी सभी का ध्यान आकृष्ट कर दिया ।

सूफियो मे इस प्रकार की नवीन चिन्तन-पद्धति के चल निकलने पर मूल इस्लाम धर्म के प्रेमियों ने उनके प्रति विरोध-भाव प्रदर्शित करना आरभ किया जिस कारण, अल् जुनैद (मृ० सन् ८९८ ई०) जैसे कुछ लोगो की ओर से यह प्रयास भी होने लगा कि इन दो परस्पर विरोधी मतो मे कोई सामञ्जस्य भी लाया जाय । इसका समर्थन पीछे अन्य सूफियो ने भी किया जिनमे अल् हुज्विरी (मृ० सन् ९९५ ई०) तथा अल् गजाली (मृ० सन् ११११ ई०) की गणना विशेष रूप मे की जाती है । अल् हुज्विरी ने इस सम्बध मे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कश्फुल-महजूब' की रचना की जिसके अन्तर्गत उन्होने अपने समय तक प्रचलित सूफी सम्प्रदायो का वर्गीकरण कर उनकी विशेषताओ का तुलनात्मक अध्ययन किया । इस प्रकार उन्होने यह प्रदर्शित करने की भी चेष्टा की कि उनमे से कदाचित् ही कोई ऐसा है जो इस्लाम धर्म के मौलिक सिद्धान्तो के सर्वथा प्रतिकूल जाता हो । अल् गज़ाली का कार्य अल् हुज्विरी से भी अधिक कही गभीर और सुव्यवस्थित सिद्ध हुआ । उन्होने अपनी विद्वत्ता एव योग्यता के आधार पर इस्लाम धर्म की मौलिक धारणाओ की भी व्याख्या एक नवीन ढग से कर डाली । अपने ग्रन्थ 'इह्याउल् उलूम' की रचना द्वारा इस बात को बडी सफलता के साथ सिद्ध कर दिया कि वस्तुत. उसके अनुसार निर्धारित आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप

भी प्रचलित सूफीमत सम्वधी आदर्शो से किसी प्रकार अधिक भिन्न पड़ता नहीं प्रतीत होता । अल् गजाली के ऐसे यत्नो ने इस प्रकार, सूफीमत की क्रान्तिकारी विचारधाराओं को भी इस्लाम धर्म के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान दे डाला जिसका पीछे वहुत प्रभाव पड़ा ।

अल् गजाली के अनन्तर कतिपय सूफी कवियो ने भी ऐसी वातो की ओर अपना ध्यान दिया और अपनी उत्कृष्ट काव्यमयी रचनाओ के माध्यम द्वारा, सूफीमत के विविध सिद्धान्तो तथा उसकी साधनाओ को अधिकाधिक लोकप्रिय वना डाला । इन सूफी कवियो ने प्रधानत. उस प्रेमतत्व को महत्व दिया जो सूफी साधक एव परमात्मा के पारस्परिक सम्वध का मूलाधार है । उन्होने अपनी सरस उक्तियो तथा रोचक वर्णनो द्वारा प्रेम-भाव के प्राय प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला और कभी-कभी उसे अपनी ललित कहानियो मे उदाहृत करते हुए उस पर ऐसा अनुपम रग चढ़ा दिया जिससे वह सर्वसाधारण तक के लिए भी सरल और सुवोध वन गया । इन काव्य-रचयिताओ की कृतियाँ पीछे वहुत प्रसिद्ध हो चली और उनमे आये हुए अनेक शव्दो ने पारिभाषिक रूप तक ग्रहण कर लिया, जिस कारण उनसे सूफीमत के प्रचार में इतनी सुगमता आ गई जो उसकी केवल दार्शनिक वा आध्यात्मिक दृष्टि के ही आधार पर कभी सभव नही थी । वहुत कुछ ऐसे शव्दो के विभिन्न आकर्षणो ने ही उसे अधिक व्यापक वनने मे भी सहायता पहुँचायी । इन सूफी कवियो मे कुछ ऐसे थे जिन्होने प्रसिद्ध सूफियो के परिचय अथवा जीवनवृत्तो की भी रचना की और उनमे स्वभावत वहुत सी ऐसी पौराणिक वातो तथा चमत्कारो तक का समावेश कर दिया जिनके कारण सूफीमत की अनेक विचारधाराओ का स्पष्टीकरण हो गया । इसी प्रकार इन सूफी कवियो ने अनेक रूवाइयाँ, मसनवियाँ तथा गजले भी केवल इसी उद्देश्य से लिख डाली कि उनके माध्यम से अत्यन्त गूढ प्रश्नो तक पर भी स्पष्ट प्रकाग डाला जा सकता था, किंतु इन सवसे अधिक महत्वपूर्ण, कदाचित् उनकी प्रेमगाथाएँ ही सिद्ध हुई ।

अरवी भापा के अन्तर्गत प्रेमकाव्यो की रचना वहुत पहले से ही होती आ रही थी और वे प्राय. युद्ध-वर्णनो मे प्रासगिक रूप से आ जाते थे । विशुद्ध व्यक्तिगत प्रेम अथवा ईश्वरीय प्रेम के प्रतीकात्मक वर्णन की परंपरा उधर, सर्वप्रथम फारसी

भाषा मे ही प्रतिष्ठित हुई। फारसी कवियो ने प्रेमोन्माद एवं विरह का वर्णन करते समय, अपनी गजलो का प्रयोग विशेष रूप से किया तथा अपनी मसनवी रचनाओ के सहारे ईश्वरीय प्रेम का प्रतिपादन और स्पष्टीकरण भी किया। उनकी ऐसी गज़ले तथा रूबाइयाँ अधिकतर फुटकर ही पायी जाती है, किंतु उन्हे सगृहीत कर विभिन्न 'दीवानो' तथा 'कुल्लियात' का रूप दे डालने की परपरा भी देखी जाती है। इसके विपरीत, मसनवी रचना-पद्धति के अनुसार, किसी वर्ण्य विषय को अधिक विस्तार भी दिया जा सकता है। इस कारण ये कवि अपनी मसनवियो के माध्यम से किसी दृष्टान्त की कथा का भी वर्णन करने लग जाते है। इस प्रकार बहुधा भौतिक प्रेम की घटनाओं की सहायता से उस ईश्वरीय प्रेम को भी उदाहृत कर देते है जो सूफ़ियो का चरम लक्ष्य समझा जाता है। रूबाइयों की रचना के लिए उमर ख़य्याम (मृ० सन् ११२३ ई०) अधिक प्रसिद्ध है। इसी प्रकार गजलो के लिए प्रसिद्ध हाफिज (मृ० सन् १३९० ई०) को सर्वाधिक श्रेय दिया जाता है तथा ये दोनो कवि अपनी ऐसी रचनाओं के कारण, अमर हो गए है। परतु मसनवी-पद्धति की रचनाओं के सम्बध मे प्राय. सनाई (मृ० सन् ११३१ ई०) निजामी (मृ० सन् १२०३ ई०), अत्तार (मृ० सन् १२३० ई०) तथा रूमी (मृ० सन् १२७३ ई०) एव जामी (मृ० सन् १४९२ ई०) के नाम लिए जाते है। इनमे से भी सनाई तथा अत्तार को इस रचना-शैली के कदाचित् पुरस्कर्ता होने का ही श्रेय प्राप्त है। इस प्रकार रूमी ने भी इसका प्रयोग अपने दृष्टान्तो मे ही किया है। केवल निज़ामी एवं जामी ही ऐसे दो प्रसिद्ध कवि है जिन्होने इससे अपनी प्रेमगाथाओ की भी रचना मे काम लिया है। इन दोनो फारसी कवियो की सफलता के कारण एक ऐसी रचना-पद्धति को प्रोत्साहन मिला जो अन्य भाषा के कवियो का भी आदर्श बन गई।

(२)

निज़ामी की पाँच मसनवियाँ 'ख़म्स' अथवा 'पजगज' (पाँच बहुमूल्य कोश) कहलाकर प्रसिद्ध हुई। इनके नाम क्रमश. 'मख़जन अल् असरार' (सन् ११७६ ई०), 'खुसरोशीरी' (सन् ११८० ई०) 'लैला मंजनू' (सन् ११८२ ई०) 'इस्कन्दर

नामा' (सन् ११९१ ई०) तथा 'हफ्तपैकर' (सन् ११९८ ई०) थे और उनकी लोकप्रियता के कारण पीछे कई अन्य कवियो ने भी इस प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत कर डाली। उदाहरण के लिए न केवल उवर के कवियो मे से किरमान ख्वाजू (मृ० सन् १३५२ ई०) तथा उपर्युक्त जामी ने ही निजामी का अनुसरण किया, अपितु भारत के प्रसिद्ध फारसी कवि अमीर खुसरो (मृ० सन् १३२५ ई०) ने भी ऐसी रचना का निर्माण करने में अपने को धन्य माना। तुर्की भाषा का कवि शेखी (मृ० सन् १४२९ ई०) तो इस प्रकार की शैली के अनुकरण मे अपनी 'शीरी-खुसरो' की रचना करके ही अमर हो गया। निजामी की इन खम्स वाली रचनाओ मे से भी 'खुसरो शीरी' तथा 'लैला मजनू' की विशेष प्रसिद्धि हुई। 'खुसरो शीरी' के अन्तर्गत सासानी सम्राट खुसरो परविज तथा उसकी प्रेमपात्री शीरी की दु खान्त प्रेमकहानी आती है जिसमे एक सुन्दरी के एक अन्य प्रेमी फरहाद को उसकी मृत्यु का झूठा समाचार सुनते ही अपने प्राणो से हाथ धो देना पडता है। फिर अत मे सम्राट परविज किसी के द्वारा मार दिया जाता है और उसे भी कब्र दिलाकर स्वय शीरी तक आत्महत्या कर लेती है। इसी प्रकार 'लैला मजनू' मे भी निजामी ने अरव देश के कैस नामक प्रेमी तथा उसकी प्रेमपात्री लैला की प्रेम-कहानी अकित की है। अत मे, उन दोनो के ही मार्ग मे अनेक प्रकार की वाधाओ का सृजन कर उनका पूर्ण सयोग नही होने दिया है जिससे वह कथा भी दु खान्त वन गई है। परतु जैसा स्वय निज़ामी के कथन द्वारा भी स्पष्ट हो जाता है, इन रचनाओ के माध्यम से उसने वास्तविक प्रेम का रहस्य भी वतला दिया है और यह सिद्ध कर दिया है कि "जो इश्क चिरस्थायी नही, वह केवल यौवन-सुलभ क्रीड़ा के समान है। केवल व्ही प्रेम सच्चा है जो न तो कभी अपनी तीव्रता मे कम होता है, न जिसका किसी प्रकार, अत तक परित्याग ही किया जा सकता है[1]।"

अमीर खुसरो ने भी अपनी पाँच मसनवियाँ वहुत कुछ निजामी की प्रतिस्पर्धा

---

१. निजामी : लैला मजनूं, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (सन् १८८० ई०) वाला संस्करण पृ० ३०।

के भाव से तथा उन्हे 'खम्स' का ही रूप देकर लिखी और उसने उन्हे क्रमश. 'मतल उल् अनवार,' 'शीरी ख़ुसरो', 'मजनू लैला', 'आईन ए इस्कन्दरी' तथा 'हश्त-विहिश्त' के नाम दिये। उसकी रचना 'शीरी ख़ुसरो' तथा 'मजनू लैला' की कथाओ का आधार स्वभावत निजामी की वैसी रचनाओ में पाया जाता है, किंतु एक भारतीय तथा परवर्ती कवि होने के भी कारण, उसने उनमे कई ऐसी नवीन वातो का भी समावेश कर दिया है जो उनमे नही थी। उसकी रचनाओ के अन्तर्गत कही-कही भारतीय वातावरण के चित्र लक्षित होते है जो निज़ामी की कृतियो मे नही पाये जाते। इसी प्रकार, जिस लगन के साथ उसने प्रेमियो का सयोग सम्बधी चित्रण करने की भी चेष्टा की है वह इसके यहाँ दुर्लभ ही समझी जा सकती है। अमीर ख़ुसरो ने इन दोनो प्रेमकहानियो के अतिरिक्त 'इश्किया' (खिज्रनाम) अथवा 'दुवलरानी खिज्रखा' नामक एक अन्य प्रेमगाथा की भी रचना की है जिसमे उसने "भारतीय सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र खिज्र खा के विशेष अनुरोध से, उसके गुजरात के राजा की पुत्री दुवलरानी के प्रति प्रदर्शित प्रेम-भाव को वडे विशद रूप मे कल्पित कर दिखाया है।[1]" और उसकी यह प्रेमकहानी भी दु खान्त ही है। किरनाम के उपर्युक्त ख्वाजू कवि ने भी 'ख़म्स' की रचना का प्रयास किया है। उसने उसके अन्तर्गत अपनी 'हुमाय-हुमायू' तथा 'नौरोज गुल' नामक दो प्रेमकथाओं को स्थान दिया है, किंतु इनमे उक्त प्रकार की स्पष्ट विशेपताओ का कोई पता नही चलता। जहाँ तक जामी के सम्वध मे कहा जा सकता है, उसने 'खम्स' की जगह 'हफ्त ओरग' अर्थात् 'सप्त सिंहासन' को रचना कर डाली और उसमे समाविष्ट की जाने वाली सात रचनाओ मे से 'सलामान ओ अव्साल,' 'यूसुफ जुलेखा' तथा 'लैला मजनू' को प्रेमकहानियों का रूप दिया। इन तीनो मे भी सूफियो का वही प्रेमादर्श अकित किया गया है जिसे "जो प्रेम वन्धन परक होता है वह कलुपित हुआ करता है, किंतु जो उन्मुख रहता है वही विशुद्ध[2] है।" जैसे शब्दो द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

1. M A Ghani: The Pre-Mughal Persian in Hindustan (Allahabad, 1941) p. 390.

2 F. Hadland Davis: The Persian Mystics-Jami (London 1918) p. 24

सूफियो की धारणा के अनुसार हम ससार मे रह कर परमात्मा से वियुक्त हो गए रहते है जिस कारण, उसे फिर से प्राप्त कर उसके साथ पूर्ण आत्मीयता का भाव अनुभव करने लगना ही हमारे जीवन का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए। परमात्मा वस्तुत विशुद्ध प्रेम स्वरूप है और वह प्रेमसाधना के ही द्वारा हमे उपलव्ध भी हो सकता है, इसलिए हमे चाहिए कि उसके प्रति अपने प्रेम-भाव को विकसित करे। अपने उस प्रेमपात्र को अपने हृदय मे स्थान देने के लिए इसे सर्वथा दोप रहित और पवित्र वना डालने की भरपूर चेष्टा करे तथा उसे निरन्तर स्मरण करते-करते और उसे सर्वत्र अनुभव करने का अभ्यास डालते हुए अत मे, उससे मिल जाय। अल् हुज्विरी का कहना है कि "परमात्मा के प्रति प्रत्येक मानव के हृदय मे विकास पाता है और यह सर्वप्रथम उसके लिए श्रद्धा के रूप मे पाया जाता है। वह क्रमश व्यापक बनता चला जाता है और प्रेमी साधक को उस समय तक शान्ति नही मिला करती, जब तक यह उसे पा नही लेता। यह उसके लिए बेचैन होकर तड़पने लग जाता है, उसके सामने प्रत्येक सांसारिक विषय की ओर से अनासक्त वन जाता है और केवल प्रेममात्र के ही नियमो का पालन करता हुआ, परमात्मा का पूर्ण परिचय पा लेता है[1]।" सूफी साधक परमात्मा को अपना 'प्रियतम' कहा करता है और सामान्यत यह इसमे विश्वास रखता है कि वह भी उसके प्रति प्रेमभाव रखता होगा। वहुत से सूफियो की तो यहाँ तक मान्यता है कि परमात्मा का ऐसा प्रेम उसका कोरा 'अनुग्रह' मात्र ही न होकर ठीक 'सासारिक प्रेम' जैसा भी हो सकता है। जो हो, वे लोग इसी दृष्टिकोण के अनुसार मानवीय प्रेम को उस आध्यात्मिक प्रेम की दशा तक पहुँचने का समर्थ साधन मानते है। जामी ने एक स्थल पर स्पप्ट शब्दो मे कहा है "इस ससार मे तुम चाहे सैंकडो उपाय करो, किंतु एक मात्र प्रेम ही ऐसा है जो तुम्हारे 'अहभाव' से तुम्हारी रक्षा कर सकता है, तुम्हे सासारिक प्रेम से मुख मोड़ने की आवश्यकता नही, क्योंकि वही तुम्हे परम सत्य तक पहुँचने मे सहायक होगा[2]।" 'इश्क मजाजी'

1. Hujwiri : Kashfal-Mahjub (Nicholson's Translation, (London, 1911) pp. 307-8
2. E. G. Browne : A Literary History of Persia (Cambridge, 1928) P. 442.

मे और 'इश्क हकीकी' मे कोई वास्तविक अन्तर नही है जिस कारण, पहला दूसरे तक पहुँचने का स्वाभाविक सोपान भी बन जा सकता है। उपर्युक्त प्रेमगाथाओं के रचयिता सूफी कवियो की इस मान्यता के प्रति पूर्ण आस्था रही। इसीलिए उन्होंने ईश्वरीय प्रेम की उपलब्धि के लिए किये जाने वाले प्रयासो को उदाहृत करने के उद्देश्य से अपनी उपर्युक्त सरस कृतियो का निर्माण किया।

ऐसे प्रयासों अथवा साधनाओं को सूफियो ने परमात्मा की ओर की जाने वाली किसी अपूर्व यात्रा के रूप में चित्रित किया है। उनके अनुसार प्रत्येक ऐसा साधक 'सालिक' वा यात्री की भाँति, अपने मार्ग का अग्रसर हुआ करता है। अल् ग़ज़ाली का कहना है कि "परमात्मा (अल्लाह) सत्तर सहस्र पर्दो के भीतर है जिनमें से कुछ प्रकाशमय तथा शेष अन्धकारमय है और यदि वह उन आवरणो को हटा लेवे तो जिस किसी की भी दृष्टि उस पर पडेगी वह उसके प्रखर प्रकाश द्वारा दग्ध हो जायगा[1]।" जन्मग्रहण करने के अनन्तर हम प्रकाशमय पर्दो की ओर से क्रमश अन्धकारमय पर्दो की ओर आते है और हमारा एक-एक ईश्वरीय गुण कम होता जाता है, किंतु वे ही हम, जब उसकी ओर एक 'सालिक' के रूप में प्रत्यावर्त्तन करने लगते हैं तो इसके विपरीत, उसके 'नूर' की ओर बढते चले जाते है। ऐसी दशा में हमें उस ओर विभिन्न सात सोपानो से होकर क्रमश. जाना पडता है और फिर अत में, चार अन्य स्थितियो को भी पार करना पड़ जाता है। सूफियो ने सप्त सोपानो को क्रमश 'अनुताप', 'आत्मसयम', 'वैराग्य', 'दारिद्रय', 'धैर्य', 'आस्था' और 'सतोष' के रूपो मे माना है और शेष चार को अपने शब्दो में, उसी प्रकार, 'मारिफत' (बुद्धि प्रसूत ज्ञान), 'इश्क' (प्रेम), 'वज्द' (उन्मादना) एव 'वस्ल' (मिलन) जैसे नाम दिये है। इनमें अन्तिम तीन दशाओ में मादन भाव का भी अश वर्तमान रहा करता है जो क्रमश. सूक्ष्मतर होता चला जाता है। इसीलिए इनके वर्णनो मे स्वभावत. उन बातो का भी समावेश हो जाता है जिनका रागरंग अथवा उन्मुक्त विलासिता-जन्य मस्ती से सम्बध है तथा 'इश्क

---

1. Al Ghazalı : Mıshkatul Anwar Translated by W. H. T. Gaırdener pp. 88-9.

मजाजी' और 'इश्क हकीकी' के तत्वत एक समझे जाने का यही रहस्य भी हो सकता है ।

प्रेममार्ग की इस अनुपम यात्रा को सासारिक प्रेमियो के जीवन मे घटाते समय, उसकी प्राय सभी वातो पर ध्यान दिया जाता है । ऐसे प्रेमी के लिए उसका प्रेम-पात्र परम सौन्दर्य का आधार वन जाता है जिसकी ओर वह आपसे आप आकृष्ट हो पडता है । फिर उसे प्राप्त कर लेने के यत्नो मे लग जाता है । ऐसा करते समय वह किसी न किसी रूप मे, उन सारी दशाओ मे भी आता चला जाता है जिनकी गणना उक्त सप्त सोपानो तथा चार स्थितियो के अन्तर्गत की गई है । जिन दशाओ को सप्त सोपान कहा गया है वे वस्तुत एक प्रेमी के लिए कतिपय नैतिक गुण जैसे वन जाते है और उनके कारण उसके जीवन मे एक विचित्र परि-वर्त्तन भी आ जाता है । उसका अपने कार्य की सिद्धि के लिए दृढव्रती वन जाना, अपूर्व साहस से काम लेना तथा यत्नशील हुए रहना, सब इसी वात के द्योतक है । फिर इसी प्रकार, उसका क्रमश. प्रेमावेश की मस्ती मे आकर निर्द्वन्द्व सा वन जाना तथा अपने उस यत्न की ही दशा मे, अपने को नष्ट तक कर डालने से मुँह न मोडना उसके ऐसे अलौकिक गुणो का परिचय देते है जो साधारणत दुर्लभ ही कहे जा सकते है । सासारिक प्रेमियो के जीवन मे हम प्राय ऐसे अनेक सकटो का भी आता जाना देखते है जो उन्हे कभी-कभी विचलित सा कर देते जान पडते है और हमे ऐसा लगता है कि इनके कारण, वे अपने यत्नो से सर्वथा विरत हो जायँगे । परतु हमे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य भी होने लगता है कि वे अत मे, इनकी पूरी उपेक्षा कर देते है और अपनी सिद्धि के लिए मर मिटते है । सूफी प्रेमगाथाओ के कवियो ने अपनी रचनाओ के अन्तर्गत , ऐसे विविध सकटो और वाधाओ के भी स्पष्ट वर्णन किये है । उन्होने इसके साथ यह भी वतला दिया है कि उनके एकान्तनिष्ठ प्रेमियो ने किस प्रकार अत तक अपना व्रत निभाया ।

सूफी कवियो ने अपनी ऐसी रचनाओ के निर्माण-कार्य को भी वहुत वडा महत्त्व प्रदान किया । उन्होने इसमे पूर्ण सफलता का प्राप्त कर लेना अत्यन्त कठिन समझा, जिस कारण उन्होने इसके लए सर्वप्रथम परमात्मा की स्तुति की, हजरत मुहम्मद तथा उनके परवर्ती चार खलीफाओ का गुणानुवाद किया और

अपने पीर का परिचय देकर उसके प्रति भी पूरी श्रद्धा प्रदर्शित की। उन्होंने ऐसा करते समय बराबर इस बात की ओर भी ध्यान रखा कि अपने समकालीन बादशाह वा शासक की भी प्रशंसा कर दे और तब कही, अपना परिचय देते समय, अपने उद्देश्य अथवा वर्ण्य विषय की कुछ चर्चा करे। अपनी इन रचनाओं के लिए वे या तो किसी पूर्व प्रचलित कहानी का कथानक ले लिया करते थे अथवा इसके लिए अपनी कल्पना का प्रयोग करते थे। परंतु, प्रत्येक दशा में, वे अपने पूर्व निश्चित नियमो का ही अनुसरण करते दीख पडते थे। उनके इस प्रकार परंपरा का पालन करते आने के कारण, एक विशिष्ट रचना-पद्धति का रूप निखरता चला आया। उनका यह कार्य सूफीमत की प्रेमप्रणाली वा प्रेमसाधना के स्पष्टीकरण और प्रचार का उद्देश्य रखता था जिस कारण, यह उनके अपने एक श्रेष्ठ कर्त्तव्य की कोटि का भी समझा जा सकता था। एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप निरूपित करने की दृष्टि से यह उनके लिए सर्वथा धार्मिक ही कहा जा सकता था। अतएव इसके लिए किसी सांसारिक प्रेमकहानी की रचना करते समय उन्हे स्वभावतः कुछ न कुछ अनौचित्य का भी बोध हो सकता था। सूफी कवियो ने इसी कारण, बराबर इस बात की भी चेष्टा की कि उसका रूप अंत मे, किसी रूपक वा उपमिति कथा का ही जान पडे। इसके लिए उन्होने इनमे प्रसंगवश अपने सिद्धान्तो का समावेश किया तथा कभी-कभी उक्त गूढ रहस्य का उद्‌घाटन तक भी कर दिया।

(३)

सूफीमत का प्रवेश भारत में सर्वप्रथम, कब और कैसे हुआ इसका निश्चित पता नही चलता। परन्तु इसमे सन्देह नही किया जा सकता कि इस्लाम धर्म यहाँ पर मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध का आक्रमण किये जाने अर्थात् सन् ७११ ई० तक अवश्य पहुँच गया था। अरब देश के व्यापारियों के साथ मालाबार के समुद्र तट पर तथा कदाचित्, पेशावर की ओर भी ऐसे धर्मोपदेशको का तब तक आकर अपने धर्म का प्रचार करने लगना और वहाँ इसका न्यूनाधिक प्रभाव का पडने लगना भी प्रसिद्ध है। फिर भी, जहाँ तक सूफीमत के यहाँ तक पहुँच पाने का सम्बंध है, यह घटना संभवतः ईसवी सन् १००० के पहले

नही घट सकती थी। इसके प्रचार की चेष्टा करने वाले धर्मप्रचारको मे सर्व-प्रथम नाम बहुधा शेख़ इस्माइल का लिया जाता है जो सन् १००५ ई० मे, लाहौर मे आये थे[1]। किंतु इनका भी पूरा परिचय नही मिलता। केवल इतना ही पता चलता है कि वे एक प्रभावशाली व्यक्ति थे और उन्होने बहुत से लोगो को धर्मान्तरित भी किया था[2]। निश्चित रूप मे यहाँ सूफीमत का प्रचार आरभ करने वाले अल् हुज्विरी ही कहे जा सकते है जो सन् १०३६ ई० मे यहाँ एक बदी के रूप मे पहुँचे थे। ये अफगानिस्तान देश के गजनी नगर के निवासी थे और एक बहुत बड़े विद्वान् एव धर्माचार्य भी थे। इन्होने अपना जीवन, अवि-वाहित रूप मे तथा धर्मप्रचार करते-करते ही यापन किया। इन्होने अपने समय तक प्रचलित सूफीमत की रूपरेखा को फारसी भाषा के माध्यम द्वारा प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम श्रेय भी, यही पर प्राप्त किया। इन्ही का लिखा हुआ 'कश्फुल महजूब' नामक वह प्रसिद्ध ग्रथ है जिसकी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है तथा जिसके रचनाकाल का लगभग सन् १०५० ई० मे होना अनुमान किया जाता है।

अल् हुज्विरी के जीवन-काल तक सूफी कवियो द्वारा रची जाने वाली प्रेम-गाथाओ की परपरा, कदाचित् प्रतिष्ठित भी नही हो पायी थी। सूफीमत के प्रचारक उस समय तक अधिकतर अपने छोटे-बडे निबधो जैसे कुछ ग्रथो द्वारा ही काम लेते आ रहे थे। वे इनमे अपने मत का निरूपण करते, उसके विविध अगो की विस्तृत व्याख्या कर देते तथा कभी-कभी, उसके अनुसार आध्यात्मिक जीवन-यापन करने वाले प्रसिद्ध महापुरुषो का परिचय देकर भी अतनी बातो का समर्थन किया करते थे। ऐसे ग्रथ बहुधा अरबी भाषा मे ही लिखे जाते थे और इन्हे प्राय धर्म पुस्तको जैसा महत्व भी दिया जाता था। ईराक देश मे सूफीमत का प्रचार हो जाने पर इसके लिए फारसी भाषा का भी प्रयोग आरभ हो गया और बहुत से सूफी इसमे अपनी कविताओ की रचना तक करने लग गए। इस समय तक इस मत के क्रमिक विकास का 'आचरण प्रधान' प्रथम

---

1. T. W Arnold : The Preaching of Islam (1935) P. 280

२. गुलाम सरवर : ख़जीनतुल असफिया (लाहौर) भाग २ पृ० २३०।

युग व्यतीत हो चुका था और इसका 'चिंतन प्रधान' द्वितीय युग भी समाप्त होने लगा था तथा इसके उस तृतीय युग का आरंभ हो गया था जिसमे इसके 'तुलनात्मक अध्ययन' की भी एक विशिष्ट परंपरा चल निकली और इसके प्रचारकों ने इसे मूल इस्लाम धर्म की परिधि के भीतर प्रतिष्ठित कर देने की भी चेष्टा आरंभ कर दी। अल् हुज्विरी ऐसे ही लोगो में से अन्यतम थे और इसी प्रकार के यत्न पीछे अल् गज़ाली आदि के द्वारा भी किये गए। फारसी कवियो ने, इनके साथ सहयोग करते समय, अपनी सरस रचनाओ से भी पूरा काम लिया और इस प्रकार उन्होंने एक विशाल सूफी काव्य-साहित्य की सृष्टि कर दी। जब अल् हुज्विरी के अनन्तर, भारत मे सूफीमत की लोकप्रियता बढ़ी और उसके चिश्तिया, सुहर्वर्दिया तथा कादिरिया जैसे कई सम्प्रदायो द्वारा उसके प्रचार-कार्य को विशेष बल मिला तो यहाँ के सूफियो में वैसी काव्य-रचना की प्रवृत्ति भी स्वभावत. जग उठी और न केवल फारसी, अपितु यहाँ की स्थानीय भाषाओ तक के माध्यम आपसे आप अपनाये जाने लगे। जब ईरान मे फारसी की प्रेम-गाथाओं की रचना होने लगी तो उनके अनुकरण मे, यहाँ के सूफी कवियो मे वैसी शैली को भी प्रश्रय देना आरंभ कर दिया।

'कश्फ़ुल् महजूब' की रचना के एक सौ से भी अधिक वर्षो के अनन्तर उधर निज़ामी ने अपनी प्रेमगाथाओ का लिखना आरंभ किया और इसके लगभग डेढ़ सौ वर्ष पीछे यहाँ पर अमीर ख़ुसरो ने अपनी रचनाओं द्वारा उसका अनुकरण किया। अमीर ख़ुसरो के अनन्तर फिर कुछ अन्य भारतीय फारसी कवियो ने भी ऐसी प्रेमगाथाओ को लिखने का प्रयास किया जिनमे से एक अर्थात् मौलाना जमीरी बिलग्रामी (मृ० सन् १५९४ ई०) ने बादशाह हुमायू के शासन-काल मे, अपनी 'लैला व मजनू' अथवा 'सर गुजश्त मजनू' का प्रणयन किया[1]। इसी प्रकार दूसरे कवि फ़ैज़ी (मृ० सन् १५९५ ई०) ने सम्राट् अकबर के शासन-काल में अपनी प्रसिद्ध प्रेमकथा 'नलदमन' को, 'महाभारत' के 'नलोपाख्यान' का

---

1. M. A. Ghani : A History of Persian Language and Literature at the Mughal Court, Part II Humayun (Allahabad 1930) p. 104.

आधार ले कर पूरा किया। फैंजी कवि को तो सम्राट् अकबर ने सन् १५८५ ई० मे निजामी के 'पजगज' के अनुकरण मे, कोई खम्स लिखने का भी परामर्श दिया था और इसके लिए पॉच ग्रथ भी चुन लिये गए थे, किन्तु उनमे से केवल 'नलदमन' को समाप्त करने पर ही इस कवि की मृत्यु हो गई। इस प्रेमाख्यान के अन्तर्गत राजा नल और उनकी रानी दमयन्ती की प्रसिद्ध कहानी कही गई। इसकी आलोचना करते हुए मुल्ला बदायूनी ने बतलाया है, "यह सच है कि ऐसी मसनवी इन तीन सौ वर्षों मे, 'खुसरो शीरी' के बाद हिंद मे शायद ही किसी ने लिखी हो।[1] फैंजी की इस रचना मे, अमीर खुसरो की मसनवियो से भी कही अधिक भारतीय वातावरण के चिह्न लक्षित होते है। इसे इस कारण भी विशेष महत्त्व दिया जा सकता है कि उस कवि ने इसका कथानक भी भारतीय कथा-परपरा से ही गृहीत किया है। परतु फिर भी वह न तो फारसी भाषा के प्रयोग का मोह त्याग सका है, न एक भारतीय प्रेमाख्यान को 'ईरानी मसनवी' का रूप दे डालने मे ही विरत रहा है। इस दूसरी बात के उदाहरण हम उन 'हिदवी' की रचनाओं मे भी पाते है जो भारत के दक्षिण प्रदेश में लिखी गई है। उनमे से 'चदर बदन व महियार' को 'मुकीम' ने सन् १६२५ ई० और १६३५ ई० के भीतर किसी समय लिखा था। उसके पहले 'कदम राव व पदम' सन् १४५७ ई० तथा 'कुतुब मुस्तरी' सन् १६०९ ई० की रचना हो चुकी थी। इन सभी के कथानक भी भारतीय प्रेमकहानियो की घटनाओं से ही सम्बद्ध थे, किंतु इनमे से सभी पर फारसी की मसनवी-पद्धति की ही पूरी छाप लगी रह गई।

फारसी की मसनवी-पद्धति से तो वस्तुत उत्तरी भारत के भी वे सूफी कवि अपने को नही बचा सके जिन्होने अपनी प्रेमगाथाओं को इधर की अवधी मे लिखा तथा जिन्होंने दक्खिनी 'हिंदवी' वालो से कही अधिक भारतीय प्रसगो को भरसक सुरक्षित रखने की भी चेष्टा की। इन्होंने भी उसी प्रकार अपनी रचनाएँ परमात्मा की स्तुति से आरभ की, हजरत मुहम्मद के अलौकिक 'नूर' का गुणगान किया, उनके परवर्ती खलीफाओ की स्तुतियो मे दो-चार शब्द कहे तथा अपने

१. राहुल साकृत्यायन : अकबर (इलाहाबाद, १९५७ ई०) पृ०८५-६।

पीरो की प्रशसा मे भी वहुत कुछ लिख डाला। इन्होने उसी शैली के अनुकरण मे अपने 'शाहेवक्त' का भी वर्णन किया तथा फिर पुस्तक के वीच-वीच मे प्रेम-साधना के स्वरूप की ओर सकेत किया। इसके सिवाय जव कभी इन्होने अपना परिचय देना चाहा उस समय भी, इन्होने वहुधा यही यत्न किया कि स्वय अपने को किसी प्रसिद्ध सूफी सप्रदाय के साथ सम्वद्ध सिद्ध करे तथा अपनी रचना का उद्देश्य भी मसनवी-पद्धति जैसा ही प्रकट करे। इनमें से एकाध कवि हमे ऐसे भी मिल जाते है जिनका लक्ष्य इस्लाम धर्म के विशिष्ट महत्व तथा उसके सामने अन्य धर्मो की हीनता स्थापित करने का जान पड़ता है और ये कभी-कभी अपने को उसका प्रचारक होना तक स्वीकार करने मे नही चूक पाते। परतु इन जैसी अनेक वातो के होते हुए भी, इन सूफी कवियो का झुकाव वहुत कुछ भारतीय परपराओ के अनुसार की ओर ही होता जान पड़ता है। ऐसा करते समय, ये वहुत अशो तक उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए से भी प्रतीत होते है। इनमे से वहुत से कवि हमें ऐसे ही मिला करते है जिन्होने यहाँ के धर्म, समाज, साहित्य एव सस्कृति को भरसक उनके अपने वास्तविक रूप मे ही, चित्रित करने का प्रयास किया है तथा इनके विपय मे अपना अच्छा ज्ञान भी होना सिद्ध कर दिया है। इनकी एक विशेषता इस वात में भी लक्षित होती है कि ये अधिकतर या तो अपने कथानको को लोकप्रचलित कहानियो से ग्रहण करते है अथवा यदि कभी अपनी कल्पना से काम लेते या ऐतिहासिक तथ्य के ऊपर अपना रग चढाते हैं तो वहाँ पर भी, ये हमे अपनी उसी मनोवृत्ति का परिचय देते है जो किसी स्थानीय वातावरण के साथ उपयुक्त सगति वनाये रखने मे प्रदर्शित की जा सकती है। इसके सिवाय इनकी भाषा मे पाये जाने वाले सस्कृतनिष्ठ तत्सम एव तद्भव शब्दो की प्रचुरता, मुहावरो तथा कहावतो के सटीक प्रयोग, परंपरागत काव्यरूढियो की स्वीकृति एव छदो का व्यवहार आदि भी कुछ ऐसी वाते है जो इन्हे उनसे पृथक् कर देती हैं।

साराश यह कि उत्तरी भारत के हिंदी सूफी प्रेमाख्यानो मे हमे कतिपय ऐसी विशेपताएँ दीख पडती है जो इन्हे भारतीय प्रेमाख्यानो की प्राचीन काल से आती हुई परपरा के भी वहुत निकट ला देती हैं। दक्खिनी हिंदी अथवा 'हिंदवी'

की ऐसी उपलब्ध रचनाओ के साथ इनकी तुलना करते समय हमे पता चलता है कि ये उनसे कम से कम लगभग ८० वर्ष पहले लिखे जाने लगते है। इनमें से सबसे पहली प्रेमगाथा जो उपलब्ध हो सकी है वह 'चदायन' है जिसका रचना-काल हि० सन् ७८१ वा ७७९ दिया हुआ मिलता है जो ईसवी सन् के अनुसार क्रमशः सन् १३७९ वा १३७७ ई० कहा जा सकता है। इसकी रचना का स्थान डलमऊ 'नयर' वा नगर (जि० रायबरेली) है जो उत्तर प्रदेश के प्रायः उस क्षेत्र से अधिक दूर नही जो पटियाली (जिला एटा) मे जन्मग्रहण करने वाले अमीर ख़ुसरो कवि का था। अमीर ख़ुसरो का देहान्त सन् १३२५ ई० मे हुआ था। इस प्रकार उसके द्वारा रची गई फारसी मसनवियॉ उस समय तक अवश्य प्रचलित और प्रसिद्ध भी हो चुकी होगी जिस समय मुल्ला दाऊद ने 'चदायन' की रचना की। परतु, फिर भी यह कवि अपने उस परम योग्य समानधर्मा का अक्षरश. अनुकरण करना अपना कर्तव्य नही समझता। यह न केवल अपनी उस कृति के अन्तर्गत केवल अवधी भाषा को ही अपनाता है, अपितु इसके साथ साथ यह उसके लिए एक ऐसा कथानक भी चुन लेता है जो साधारण भारतीय समाज की कहानियो में उपलब्ध है तथा जिसके साथ सूफीमत वा सूफी साहित्य का कोई प्रत्यक्ष मेल भी नही हो सकता, न इसी कारण, उनके प्रचार-कार्य में किसी प्रकार की समुचित सहायता ही ली जा सकती है।

दक्खिनी हिंदी वा 'हिंदवी' के सर्वप्रथम कहे जाने वाले प्रेमाख्यान 'कदम राव व पदम' के विषय मे हमे यथेष्ट विवरण उपलब्ध नही है। केवल इतना ही बतलाया जाता है कि इसकी रचना सन् १४५७ ई० मे हुई होगी जो समय उक्त 'चदायन' के रचना-काल से प्रत्यक्षत पीछे चला जाता है। इसके अनन्तर लिखे गए ऐसे प्रेमाख्यानों मे से 'कुतुब मुश्तरी' का आधार, उसके कवि ने अपने समय के शाहजादा मुहम्मद कुली की एक प्रेमकहानी को प्रायः उसी प्रकार बनाया है जिस प्रकार उत्तरी भारत के अमीर ख़ुसरो ने अपनी 'दुवल देवी व खिज्र खा' नामक फ़ारसी रचना का निर्माण करते समय किया था। यह लगभग उसी प्रकार, उसे एक विचित्र काल्पनिक रूप देने तथा मसनवी शैली मे ढालने का भी यत्न करता है। इसके सिवाय उसके अनन्तर जो प्रेमगाथा 'चंदर वदन व माहियार' नाम से

लिखी जाती है उसमें लोकजीवन को चित्रित करते समय भी इस्लाम धर्म की महत्ता सिद्ध की जाने लगती है।

अतएव, हमे यह बात कुछ विचित्र-सी भी लग सकती है कि एक ओर जहाँ उत्तरी भारत का सूफी प्रेमाख्यान-कवि मुल्ला दाऊद अपने निकट उपलब्ध होने वाले अमीर खुसरो के रचनादर्श का अनुसरण न करके इधर की भारतीय पर-परा को प्रश्रय देता है, वहाँ दक्खिनी 'हिंदवी' के वैसे कवि उसका पालन अधिक दूरवर्ती होते हुए भी, प्राय. अक्षरश करने लग जाते है। ये लोग संभवत. अपने क्षेत्र मे प्रतिष्ठित वैसी परंपरा की ओर से भी आँखे मूँद लेना ठीक समझते है जो नल एव दमयन्ती तथा उपा एव अनिरुद्ध अथवा रुक्मिणी एव कृष्ण की पौराणिक कथाओ को लकर प्रतिष्ठित थी और जो उनके निकट बोली जाने वाली कन्नड एव मराठी भाषाओ मे संस्कृत के आधार पर लिखी जाने वाली प्रेमगाथाओं के कारण, उनके कुछ पहले से ही चल निकली थी। परतु उत्तरी भारत के एक दरबारी कवि फैजी का ध्यान अपनी फारसी की रचना के लिए भी, उनकी ओर आप से आप आकृष्ट हो जाता है और वह अपनी उस 'नल दमन' नामक मसनवी की रचना कर देता है जिसकी चर्चा इसके पहले भी की जा चुकी है।

(४)

'हिंदवी' वाले दक्खिनी सूफी प्रेमाख्यानो तथा उत्तरी भारत वाली वैसी अवधी की प्रेमगाथाओ मे जो उपर्युक्त अन्तर लक्षित होता है उसका एक प्रत्यक्ष कारण यह हो सकता है कि, प्रथम वर्ग वाली रचनाओ के लिए जहाँ उनकी भाषा मे कोई रचना-शैली की पूर्व प्रचलित परपरा नही थी, वहाँ द्वितीय वर्ग वाली कृतियो के लिए वैसी रचना-शैली का एक आदर्श बहुत पहले से ही प्रतिष्ठित हो चुका था। 'हिंदवी' दक्खिनी भारत की ओर मुस्लिम शासकों के साथ गई थी और वह अधिकतर बोलने की व्यावहारिक भाषा के ही रूप मे चालू हुई थी। मुस्लिम धर्मोपदेशको ने उसे वहाँ, अपने धर्म-प्रचार का भी माध्यम बनाकर व्यवहार मे लाना आरभ किया। उस क्षेत्र के लिए बहुत कुछ विदेशी होने के कारण, वे किसी ऐसी साहित्यिक शैली को अपनाने में असमर्थ रहे जो वहाँ के लिए

सर्वथा परिचित कही जा सकती थी। इसके सिवाय अभी तक यह भी पता नही चल सका है कि उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा में उस काल तक कोई रचना भी कही प्रस्तुत की जा सकी थी या नही, प्रत्युत इस सम्बध मे बहुधा यही अनुमान किया जाता है कि उसके मूल रूप वाली 'कौरवी' भी तब तक केवल बोलचाल की ही भाषा रही थी। परतु ठीक यही बात हम उत्तर वाली अवधी के लिए भी नही कह सकते। इसके विषय मे डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का अनुमान है कि "ईसवी सन् की बारहवी शताब्दी के मध्यकाल तक यह भाषा लगभग उस कोटि तक विकसित हो चुकी थी जिस तक यह इस समय भी दीख पड़ती है[1]" और तदनुसार दामोदर की उपलब्ध रचना 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' के अन्तर्गत उन्हे 'पूर्ण विकसित कोसली' का रूप दीख पड़ा है। इसी प्रकार, 'प्रिंस ऑफ् वेल्स म्यूज़ियम (बबई)" मे सुरक्षित एक शिलालेख के आधार पर पढी गई किसी 'राउल वेल' (राजकुल विलास) नामक रचना के विषय मे, डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने अनुमान किया है कि वह कदाचित् 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' के भी पहले निर्मित हुई होगी तथा उसमे वर्णित नखशिख जैसे विषय को देखकर हम यह भी कह सकते है कि उसके रचना-काल तक 'सरस काव्य' भी रचे जाते रहे होगे। डॉ० गुप्त के अनुमान से यह रचना ईसवी सन् की ग्यारहवी शताब्दी की हो सकती है और इसकी भाषा भी प्रधानत पुरानी 'दक्षिण कोसली' है[2]।

वास्तव मे, यदि मुल्ला दाऊद के पहले से ही 'कोसली' अथवा अवधी में कोई साहित्यिक रचना-पद्धति प्रतिष्ठित हो चुकी थी और उसके अनुसार इसमें 'राउल वेल' जैसी शृंगाररस से सम्बद्ध रचनाएँ प्रस्तुत की जा रही थी, उस दशा में कदाचित्, हमारा यह अनुमान कर लेना भी अनुचित न समझा जाय कि इस

---

१. दामोदर : उक्ति व्यक्ति प्रकरण (भारतीय विद्याभवन, बम्बई, सन् १९५३ ई० के भूमिका भाग में डॉ० चाटुर्ज्या का अंग्रेजी लेख, पृ० ७०

२. 'हिंदी-अनुशीलन' (भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग) के 'धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक' (१९६० ई०) में प्रकाशित डॉ० गुप्त का रोडा कृत 'राउलवेल (राजकुल विलास)' शीर्षक लेख, पृ० २१-३८।

भाषा के माध्यम द्वारा, उस समय तक दो-चार प्रेमकहानियाँ भी लिखी या रची गई होगी। इसके लिए हमे एक समर्थन इस वात से भी मिल जाता है कि प्रेम-गाथाओ की एक ऐसी परपरा को अपभ्र श काल से ही कोई न कोई रूप मिल चुका था। जैन कवियो मे से कुछ ने 'चरिउ' काव्यों की रचना करके उनमें से अधिकाश मे प्रेमाख्यानको की वर्णन-शैली का सूत्रपात कर दिया था। वैसी रच-नाओ के अन्तर्गत कभी नायक एव नायिका के परस्पर एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाने तथा उसके साथ सम्मिलन के लिए यत्नशील हो पडने और कभी-कभी उसके लिए सिंहल तक की यात्रा करने एव कष्ट भोगने की कथाएँ आ जाती है। ईसवी सन् की दसवी शताब्दी मे पुष्पदन्त द्वारा रचित 'णाय कुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) के अन्तर्गत चित्रदर्शन के आधार पर प्रेमोत्पत्ति का होना तक निर्देश किया गया मिलता है। सभवत· ग्यारहवी शताब्दी मे रचे गए कवि 'चाहिल' के 'पउमसिरी चरिउ' (पद्मश्री चरित) मे प्रेमपरक विह्वलता एव विरहयातना का सजीव चित्रण किया गया दीख पडता है तथा वारहवी शताब्दी मे हरिभद्र द्वारा निर्मित 'सनत्कुमार चरित' के अन्तर्गत प्रेमासक्ति, यत्न एव वाधा-सम्वधी विविध घटनाओ की योजना भी लगभग उसी प्रकार की गई मिलती है जो सूफी प्रेमाख्यानों की विशेपता है। इसके सिवाय, सभवत. हरिभद्र के ही समकालीन मुस्लिम कवि अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) द्वारा रचित प्रसिद्ध 'सदेश रासक', नामक प्रेमकाव्य में हमे उस विरह-सदेश का भी एक उत्कृष्ट उदाहरण मिल जाता है जिसका वर्णन हिंदी के सूफी कवियो ने किया है। अपभ्र श वाले 'चरिउ' काव्यों मे हमें उस चौपाई-दोहा पद्धति के अनुसार लिखी जाने वाली प्रेमगाथा का भी आदर्श मिल जाता है जो विशेपकर अवधी मे निर्मित हुई और जिसकी एक स्पष्ट परंपरा प्राय फारसी की मसनवियो जैसी ही चल पडी। मुल्ला दाऊद के लिए ये सभी वाते पथ-प्रदर्शन कर सकती थी और तदनुसार निर्मित साँचे मे वह अपनी 'चदायन' वाली लोकगाथा को ढाल भी सकता था। राज-स्थानी हिंदी के दामो कवि ने भी, अपनी प्रेमकथा 'लखमसेन पद्मावती' की रचना करते समय, पीछे इसी रचना-शैली को न्यूनाधिक अपनाना आवश्यक समझा और मुल्ला दाऊद के परवर्ती सूफी प्रेमगाथा कवियो के लिए तो यह अनिवार्य

तक जैसी सिद्ध हुई। दक्खिनी 'हिदवी' वाले सूफी कवियों के लिए उधर कोई ऐसा स्पप्ट मार्ग निश्चित नही किया जा सकता था। ये लोग अन्य स्थानो से आकर अपनी धाक जमाने वाले धर्मोपदेशको द्वारा कदाचित् कही अधिक प्रभावित थे जिस कारण इन्होने वैसे आदर्शो का ही अनसरण करना उचित समझा जो इन्हे उनके साथ अरबी एव फारसी साहित्यो के माध्यम से आकर उपलब्ध हुए थे। ऐसे आदर्श ही इन्हे अपनी नव प्रतिप्ठित साहित्य रचना-पद्धति के लिए वैसे धार्मिक वातावरण मे, अधिक अनुकूल तथा स्वाभाविक तक प्रतीत हुए होगे। परतु ठीक यही बात हम उत्तरी भारत वाले सूफी कवियो के विपय मे भी नही कह सकते। यहाँ का इस्लाम प्रभावित वातावरण अपेक्षाकृत अधिक पुराना हो चुका था और वह जनजीवन के लिए बहुत कुछ सुपरिचित-सा बन कर उसके मेल मे आ गया भी जान पडता था। अतएव किसी सूफीमत-प्रचारक के लिए यह बात उतनी कठिन नही रह गई थी कि वह अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी पूर्व प्रचलित रचना -पद्धति का ही माध्यम स्वीकार कर ले तथा उसकी सहायता से अपना काम निकाले।

भारतीय प्रेमाख्यानो की परपरा अत्यन्त प्राचीन थी और वह बहुत व्यापक एव वैविध्यपूर्ण भी कही जा सकती थी। वह न केवल मौखिक रूप में विकसति होती आई थी, अपितु उसकी रचना-शैली मे भी समयानुसार विकास होता आया था। इसके सिवाय, अपने अपनाये गए कथानको के आधार पर वे अनेक वर्गो में विभाजित भी किये जा सकते थे। उदाहरण के लिए यदि किसी प्रेमाख्यान के नायक और नायिका विधिवत् विवाहित होने के कारण, 'दाम्पत्यप्रेम' का आदर्श उपस्थित करते थे तो अन्यत्र उनका इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध रहना आवश्यक नही था। इस दशा मे वे विभिन्न कोटियो में भी लाये जा सकते थे। दो अविवाहित व्यक्तियो का पारस्परिक प्रेम या तो सौंदर्य जैसे उत्कृप्ट गुणो के आधार पर आरभ होता था और वह बहुत कुछ विशुद्ध और स्वाभाविक भी हुआ करता था अथवा वह कभी-कभी, किसी व्याज से जागृत होकर कामवासनापरक और कलुपित एव कृत्रिम तक बन जाया करता था, जिस कारण उन दोनो दशाओ के प्रेमी क्रमश. या तो विशुद्ध प्रेमी अथवा कामी मात्र कहे जा सकते थे। इसी प्रकार, उन

दोनों की सम्मिलित अवस्था में, कभी-कभी कुछ ऐसे उदाहरण भी मिल जाते थे जिनमें एक ओर जहाँ प्रेमाख्यान की नायिका कोई विवाहिता पत्नी हुआ करती थी, वहाँ दूसरी ओर, उसके प्रति कोई कामी व्यक्ति अपनी आसक्ति प्रकट करता दीख पडता था तथा जहाँ पर उस प्रेमपात्री मे दृढ पातिव्रत धर्म का भाव वने रहने के कारण, यह सम्वध वहुधा एकागी वनकर ही रह जाया करता था। इसके सिवाय, उस काल तक प्रचलित भारतीय प्रेमाख्यान परपरा के अन्तर्गत, कभी-कभी कुछ ऐसी प्रेमकहानियो के भी उदाहरण मिल जाते थे जिनमे उनके रचयिता का उद्देश्य किसी आध्यात्मिक सिद्धान्त का प्रतिपादन भी रहा करता था और जिन्हे इसी कारण, उपर्युक्त कोई भी रूप ग्रहण कर लेने पर अधिकतर कथा रूपक वा उपमिति कथा ही कहा जा सकता था। इस प्रकार, यदि हम प्रेम के उक्त विविध रूपो को पृथक्-पृथक् नाम देना चाहे तो उन्हे क्रमश. (१) दाम्पत्य प्रेम, (२) विशुद्ध भावपरक प्रेम, (३) कामासक्तिपरक प्रेम, (४) पातिव्रतपरक प्रेम तथा (५) अध्यात्मपरक प्रेम कह सकते है। इसी के अनुसार, इन पर आधारित प्रेमाख्यानो का भी वर्गीकरण किया जा सकता है जिनके उदाहरण यहाँ कदाचित् प्रचुर संख्या मे मिल जाते रहे होगें। कम से कम उस काल तक, उक्त प्रथम वर्ग वाले प्रेम को उदाहृत करने के लिए प्रसिद्ध राजा नल एवं दमयन्ती का प्रेमाख्यान उपस्थित किया जा सकता था। दूसरे वर्ग वाले के उदाहरण मे उपा एव अनिरुद्ध की प्रेमकथा दी जा सकती थी, तीसरे वर्ग के सम्वध मे 'कट्ठहारि जातक' वाली कथा प्रस्तुत की जा सकती थी और, चौथे वर्ग के प्रसग मे, 'वेताल पच विंशति' की धर्मदत्त और मदनसेना वाली कथा का उदाहरण दिया जा सकता था। इसी प्रकार, पाँचवे वर्ग के लिए जैन कवियो की 'उपमिति कथाओ' के दृष्टान्त भी वतलाये जा सकते थे।

यह सच है कि इस प्रकार के प्रेमाख्यानो के विविध उदाहरण या तो सस्कृत वा पाली अथवा प्राकृत या अपभ्रंश भापाओ मे ही रचित मिल सकते थे। वे सर्वसाधारण के लिए कदाचित् उपलब्ध भी नही हो सकते थे, किंतु इस वात मे भी सन्देह नही किया जा सकता कि इनमें से कुछ के विभिन्न रूप मौखिक दशा मे भी प्रचलित थे और वे वहुत लोकप्रिय तक वन गए थे। हम तो यहाँ तक भी अनु-

मान कर सकते है कि उक्त पॉच वर्गो मे से एक से अधिक के उदाहरण, केवल एक ही कथा के अन्तर्गत एकत्र मिल जाते रहे होगे। यदि हम एक मात्र नल एवं दमयन्ती की प्रेमकथा पर ही विचार करने लगें तो भी पता चलेगा कि एक ओर जहाँ इन दोनो प्रेमियो के प्रथम जागृत प्रेम वा पूर्वानुराग को हम 'विशुद्ध प्रेम' की कोटि मे रख सकते है। उन दोनो के बीच वैवाहिक सम्बध हो जाने के पहले वाले उनके यत्नों तथा उनकी दशाओ को वैसे प्रेमियो के उत्कृष्ट प्रेमव्यापारो मे स्थान दे सकते हैं, वहाँ उन दोनो के एक दूसरे से वियुक्त हो जाने अथवा एक साथ रहने की दशाओ के आधार पर हम उपर्युक्त दाम्पत्यप्रेम को भी उदाहृत कर सकते हैं। इसके सिवाय वियोगावस्था मे प्रेमिका पत्नी दमयन्ती के प्रति कामासक्ति का भाव प्रकट करने वाले व्यक्तियों की ओर जो उसका तिरस्कार पूर्ण भाव व्यक्त हुआ है तथा जिस प्रकार उसने अपनी परीक्षा लेने वालो के प्रति कठोर उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया है उसमे स्पष्ट है कि इस कथा पर आधारित प्रेमाख्यान को हम उपर्युक्त पातिव्रतपरक प्रेम के भी उपयुक्त उदाहरणों मे स्थान दे सकते है। इसी प्रकार जिस पूर्व प्रचलित लोरिक एव चदा की लोकगाथा का मुल्ला दाऊद ने अपने प्रेमाख्यान 'चदायन' का आधार स्वीकार किया उसके भीतर भी हमे इनमें से एक से अधिक वर्गो का समावेश किया गया दीख पडेगा और वहाँ पर हमें ऐसा भी प्रतीत हो सकता है कि उसमे कोई गूढ रहस्य भी निहित है। 'चंदायन' वाली प्रेमकहानी उन दिनों कदाचित्, अधिकतर अपने मौखिक रूप मे ही प्रचलित रही, जहाँ ऐसी अन्य उपर्युक्त कथाओ का पता किन्ही पुराणो, काव्य-ग्रंथो, कथानक रचनाओ अथवा धार्मिक पुस्तको तक में लगाया जा सकता था। सूफी प्रेमगाथाओ के कवियो का उद्देश्य, अपनी ऐसी रचनाओ द्वारा अपने मत का सर्व साधारण मे प्रचार करना भी रहा जिस कारण, उनके लिए यह अधिक स्वाभाविक था कि वे भरसक इनके लिए केवल ऐसे कथानको को ही चुने जो पूर्व प्रचलित एव लोकप्रिय भी कहे जा सकते हो और जिनकी ओर इसी कारण, वे अपने पाठको वा श्रोताओ का ध्यान सुगम रूप मे आकृष्ट कर उन पर यथेष्ट प्रभाव भी डाल सकते रहे हो। फारसी के कवि अमीर खुसरो ने इस सम्बंध मे, बहुत कुछ ईरान के कवि निजामी का अनुसरण करना उचित समझा। उसने अपनी

ऐसी रचनाओं का माध्यम उन प्रेमकथाओ को ही वनाया जिन्हे उस कवि ने भी अपनाया था और सभवत. एक दरवारी कवि के नाते, उसका ध्यान इस वात की ओर भी चला गया कि हम अपने आश्रयदाता को भी किसी आदर्श प्रेमी के ही रूप में चित्रित कर डाले। दक्खिनी 'हिंदवी' के ऐसे कवियो में से 'कुतुवमुश्तरी' के रचयिता मुल्ला वजही का ध्यान भी, कदाचित् अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने की ही ओर गया तथा अपनी 'सवरस' नामक प्रेमगाथा के द्वारा भी उसने किसी विदेशी फारसी कवि का ही अनुसरण किया। यदि उसके अतिरिक्त अन्य ऐसे कवियो ने स्थानीय प्रेमकथाओ को महत्व दिया अथवा वैसी काल्पनिक कहानियाँ गडी, उस दशा में वे भी केवल इतना ही कर सके कि उन्हे उन्होने फारसी भापा का जामा न पहना कर, अपनी 'हिंदवी' मे निर्मित कर दिया। इस दशा मे भी उन्होंने भरसक फारसी के ही छदो से काम लिया तथा उस रचना-शैली का ही अनुकरण किया जिसे फारसी कवियो ने उन्हे उत्तरी भारत के हिंदी वाले सूफी कवियो की भाँति, इतना और भी न सूझ सका कि हम अपनी प्रेमगाथाओ का रूप यहाँ की पूर्व प्रचलित ढाँचों में ढाल देने का यत्न करें और, इस प्रकार उन्हे अधिक लोकप्रिय वन जाने का समुचित अवसर भी प्रदान कर दे।

दक्खिनी 'हिंदवी' वाले इन सूफ़ी कवियो के विपय मे एक यह वात भी उल्लेखनीय जान पडती है कि ये प्राय. सभी दरवारी कवि कहे जा सकते थे। इनके आश्रयदाता सुलतानो पर अधिकतर अरवी एव फारसी के पडित मुल्लाओ का प्रभाव रहा करता था। उनके दरवारो मे भी फारसी भापा का ही वोलवाला था जिसकारण, ये स्वभावत उन छदों को ही अपनाना अधिक उचित समझ सकते थे जो यद्यपि मूलत अरवी के मात्रिक छद थे, किंतु जिन्हे स्वय फारसी के कवियो ने भी अपनी रचनाओ के लिए स्वीकार कर लिया था। इसके विपरीत उत्तरी भारत के हिंदी सूफी कवियो के भी सम्वध में ऐसा कहने के लिए हमे कोई कारण नही दीख पडता। यदि हम ऐसे सर्वप्रथम कवि मुल्ला दाऊद से लेकर सन् १९१७ ई० मे 'प्रेम-दर्पण' की रचना करने वाले कवि नसीर तक पर एक दृष्टि डाले तो जान पडेगा कि इनमें से प्राय· सभी इस प्रकार के ही कवि थे जिन्होंने अपनी रचनाएँ किसी सुलतान विशेप अथवा आश्रयदाता की प्रेरणा से नही लिखी, न

इन्होने किन्ही ऐसे स्वामियो वा पोषकों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही अपना कार्य आरभ किया था। ये लोग अधिकतर शासन-केन्द्रो से कुछ न कुछ दूरवर्ती नगरो के निवासी थे और इनके लिए कदाचित् कोई राजवृत्ति भी निर्धारित नही थी। कम से कम अभी तक उपलब्ध सामग्रियो के आधार पर इतना ही पता चल पाता है कि मुल्ला दाऊद डलमऊ (जिला रायबरेली) के रहने वाले थे, मलिक मुहम्मद जायसी भी जायस (जिला रायबरेली) के ही निवासी थे, शेख़ नबी का निवास-स्थान जौनपुर सरकार के अन्तर्गत कोई 'अदले मऊ' नामक नगर था, कासिमशाह दरियाबाद (जिला लखनऊ) के रहने वाले थे, शेख़ निसार का जन्म-स्थान जिला फैजाबाद का शेखपुर नामक नगर था, ख्वाज़ा अहमद का जन्म प्रतापगढ़ जिले के बाबूगज नामक गाँव मे हुआ था, शेख़ रहीम जरवल (जिला बहराइच) के रहने वाले थे तथा कवि नसीर का जन्म-स्थान भी जमनिया नामक नगर था जो गाजीपुर जिले मे वर्तमान है। यही कारण है कि इनमे से प्राय. सभी ने 'शाहेवक़्त' की चर्चा करते समय अपने समकालीन दिल्ली के शासक का ही नाम लेना पर्याप्त समझ लिया है जिससे रचना-काल का पता चल सके। शेख़ रहीम ने तो इसके लिए सम्राट् सप्तम एडवर्ड तक की चर्चा कर दी है। केवल शेख़ कुतबन ही एक मात्र ऐसे कवि दीख पडते है जिन्होने अपनी 'मृगावती' के अन्तर्गत 'साहे हुसेन' का नाम लिया है जो जौनपुर का हुसेन शाह शर्की माना जा सकता है। परतु यह कवि भी, दक्खिनी 'हिंदवी' वालो की भाँति फारसी साहित्य की रचना-पद्धति को नही अपनाता जिसका कारण, कदाचित् यही हो सकता है कि उसके लिए इसे कोई विशेष प्रेरणा नही मिली होगी और उसने उसे हिंदी की प्रचलित रचना-शैली में ही लिख दिया होगा।

जिस प्रकार उत्तरी भारत के वर्त्तमान उत्तर प्रदेश प्रान्त को हम हिंदी की सूफीप्रेमगाथाओ का प्रधान क्षेत्र कह सकते है, उसी प्रकार इसके 'पूर्वी' एव 'पश्चिमी' हिंदी की सूफी प्रेमगाथाओ का प्रधान क्षेत्र कह सकते है, उसी प्रकार इसके 'पूर्वी' एव 'पश्चिमी' बगाल प्राती को बगला भाषा वाले सूफी प्रेमाख्यानो का क्षेत्र भी ठहरा सकते है। उधर के चटगाँव, रोसाँग (आराकान) एवं सिलेहट, भुरसुटी आदि के बगला कवियो ने भी इस प्रकार की अनेक रचनाएँ निर्मित की है।

रोसाँग अथवा आराकान मे इसकी ओर कदाचित् सर्व प्रथम उल्लेखनीय यत्न किये गए। रोसाँग के राजा श्री सुधर्म (सन् १६२२-३८ ई०), के वजीर अशरफ खा के अनुरोध से वहाँ के दौलत काजी नामक कवि ने अपनी 'सती मयना ओर लोर चन्द्राणी' रचना का लिखना आरभ किया, किंतु वह उसे पूरा नही कर सका। उसके परवर्ती अलाओल कवि ने उसे समाप्त किया जिसका आश्रयदाता सुलेमान (सन् १६५२-८४ ई०) था तथा जिसने एकाध अन्य प्रेमाख्यानो की भी रचना की। इन दोनो कवियो के अनन्तर पीछे सैयद हमजा ने 'मधुमालती' लिखी, वहराम ने 'लैलामजनू' का प्रणयन किया तथा खलील ने 'चन्द्रमुखी' तथा मुहम्मद खातिन ने 'मृगावती' जैसे कुछ प्रेमाख्यान लिखे। परतु इनमे से कदाचित् किसी भी कवि को उन अरवी एव फारसी साहित्य की मुख्य रचना-शैलियो को महत्व देना उचित नही जा पडा जितना दक्खिनी 'हिंदवी' के उपर्युक्त कवियों की समझ में आया था। इसका कारण यह हो सकता है कि दौलत काज़ी एव अलाओल जैसे दरवारी कवियो तक के आश्रयदाताओ को भी इसकी कोई विशेप चिंता नही थी और उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि हिंदी जैसी भापाओ के लोक प्रे- प्रेमाख्यानो को अपनी वगला भापा के माध्यम से तथा भरसक उसी की रचना-शैली द्वारा भी सर्व साधारण के लिए सुलभ वना देना चाहिए। उन्हे कदाचित् इस वात की भी प्रवल इच्छा नही थी कि ऐसी रचनाओ के द्वारा सूफीमत के प्रचार में विशेप सहायता ली जाय। 'हिंदवी' के सूफी कवियो ने सभवत मत-प्रचार एवं रचना-शैली का प्रयोग, इन दोनो दृष्टियो से काम करने की चेष्टा की है।

उत्तर प्रदेश के पश्चिम पजाव की ओर भी वहुत से सूफी प्रेमाख्यानो की की रचना हुई है। वास्तव में पजाव की भापा पजावी के साहित्य का आरभ ही कवियो की कृतियो से किया जाता है और कहा जाता है कि उसका प्रथम ज्ञात कवि वावा फरीद शकरगज (सन् ११७३-१२५६ ई०) रहा जिसकी कतिपय रचनाएँ पुरानी (लहदी) के गेय पद्यो में उपलव्ध है। वावा फरीद के अनन्तर वहुत काल तक फुटकल काव्यो की ही रचना होती रही और जहाँ तक पता चलता है, सम्राट अकवर के समय (सन् १५५६-१६०५ ई० के वीच) किसी दामोदर नामक कवि ने सर्वप्रथम, 'हीर और राँझा' नामक प्रसिद्ध प्रेमियो की प्रेमकहानी

इन्होने किन्ही ऐसे स्वामियो वा पोषको को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही अपना कार्य आरभ किया था। ये लोग अधिकतर शासन-केन्द्रो से कुछ न कुछ दूरवर्ती नगरो के निवासी थे और इनके लिए कदाचित् कोई राजवृत्ति भी निर्धारित नही थी। कम से कम अभी तक उपलब्ध सामग्रियो के आधार पर इतना ही पता चल पाता है कि मुल्ला दाऊद डलमऊ (जिला रायबरेली) के रहने वाले थे, मलिक मुहम्मद जायसी भी जायस (जिला रायबरेली) के ही निवासी थे, शेख़ नबी का निवास-स्थान जौनपुर सरकार के अन्तर्गत कोई 'अदले मऊ' नामक नगर था, कासिमशाह दरियावाद (जिला लखनऊ) के रहने वाले थे, शेख़ निसार का जन्म-स्थान जिला फैजाबाद का शेख़पुर नामक नगर था, ख्वाजा अहमद का जन्म प्रतापगढ जिले के वाबूगज नामक गॉव मे हुआ था, शेख़ रहीम जरवल (जिला वहराइच) के रहने वाले थे तथा कवि नसीर का जन्म-स्थान भी जमनिया नामक नगर था जो गाजीपुर जिले मे वर्तमान है। यही कारण है कि इनमे से प्राय. सभी ने 'शाहेवक्त' की चर्चा करते समय अपने समकालीन दिल्ली के शासक का ही नाम लेना पर्याप्त समझ लिया है जिससे रचना-काल का पता चल सके। शेख़ रहीम ने तो इसके लिए सम्राट् सप्तम एडवर्ड तक की चर्चा कर दी है। केवल शेख़ कुतवन ही एक मात्र ऐसे कवि दीख पड़ते है जिन्होने अपनी 'मृगावती' के अन्तर्गत 'साहे हुसेन' का नाम लिया है जो जौनपुर का हुसेन शाह शर्की माना जा सकता है। परतु यह कवि भी, दक्खिनी 'हिंदवी' वालो की भाँति फारसी साहित्य की रचना-पद्धति को नही अपनाता जिसका कारण, कदाचित् यही हो सकता है कि उसके लिए इसे कोई विशेप प्रेरणा नही मिली होगी और उसने उसे हिंदी की प्रचलित रचना-शैली मे ही लिख दिया होगा।

जिस प्रकार उत्तरी भारत के वर्तमान उत्तर प्रदेश प्रान्त को हम हिंदी की सूफीप्रेमगाथाओ का प्रधान क्षेत्र कह सकते है, उसी प्रकार इसके 'पूर्वी' एव 'पश्चिमी' हिंदी की सूफी प्रेमगाथाओ का प्रधान क्षेत्र कह सकते है, उसी प्रकार इसके 'पूर्वी' एव 'पश्चिमी' वगाल प्रातो को वगला भापा वाले सूफी प्रेमाख्यानो का क्षेत्र भी ठहरा मकते है। उधर के चटगाँव, रोसाँग (आराकान) एव सिलेहट, भुरसुटी आदि के वगला कवियो ने भी इस प्रकार की अनेक रचनाएँ निर्मित की है।

रोसाँग अथवा आराकान मे इसकी ओर कदाचित् सर्व प्रथम उल्लेखनीय यत्न किये गए। रोसाँग के राजा श्री सुधर्म (सन् १६२२-३८ ई०) के वजीर अशरफ खां के अनुरोध से वहाँ के दौलत काजी नामक कवि ने अपनी 'सती मयना ओर लोर चन्द्राणी' रचना का लिखना आरभ किया, किंतु वह उसे पूरा नही कर सका। उसके परवर्ती अलाओल कवि ने उसे समाप्त किया जिसका आश्रयदाता सुलेमान (सन् १६५२-८४ ई०) था तथा जिसने एकाध अन्य प्रेमाख्यानो की भी रचना की। इन दोनो कवियो के अनन्तर पीछे सैयद हमज़ा ने 'मधुमालती' लिखी, वहराम ने 'लैलामजनू' का प्रणयन किया तथा खलील ने 'चन्द्रमुखी' तथा मुहम्मद खातिन ने 'मृगावती' जैसे कुछ प्रेमाख्यान लिखे। परतु इनमे से कदाचित् किसी भी कवि को उन अरवी एव फारसी साहित्य की मुख्य रचना-शैलियो को महत्व देना उचित नही जा पडा जितना दक्खिनी 'हिंदवी' के उपर्युक्त कवियो की समझ मे आया था। इसका कारण यह हो सकता है कि दौलत काजी एव अलाओल जैसे दरवारी कवियो तक के आश्रयदाताओं को भी इसकी कोई विशेप चिंता नही थी और उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि हिंदी जैसी भाषाओ के लोकप्रिय प्रेमाख्यानो को अपनी वगला भापा के माध्यम से तथा भरसक उसी की रचना-शैली द्वारा भी सर्व सावारण के लिए सुलभ वना देना चाहिए। उन्हे कदाचित् इस वात की भी प्रवल इच्छा नही थी कि ऐसी रचनाओ के द्वारा सूफीमत के प्रचार मे विशेप सहायता ली जाय। 'हिंदवी' के सूफी कवियो ने सभवत मत-प्रचार एवं रचना-शैली का प्रयोग, इन दोनो दृष्टियो से काम करने की चेष्टा की है।

उत्तर प्रदेश के पश्चिम पजाव की ओर भी वहुत से सूफी प्रेमाख्यानो की की रचना हुई है। वास्तव में पंजाव की भापा पजावी के साहित्य का आरभ ही कवियो की कृतियो से किया जाता है और कहा जाता है कि उसका प्रथम ज्ञात कवि वावा फरीद शकरगज (सन् ११७३-१२५६ ई०) रहा जिसकी कतिपय रचनाएँ पुरानी (लहदी) के गेय पद्यो में उपलव्व है। वावा फरीद के अनन्तर वहुत काल तक फुटकल काव्यो की ही रचना होती रही और जहाँ तक पता चलता है, सम्राट अकवर के समय (सन् १५५६-१६०५ ई० के वीच) किसी दामोदर नामक कवि ने सर्वप्रथम, 'हीर और राँझा' नामक प्रसिद्ध प्रेमियो की प्रेमकहानी

लिखी जो पीछे आने वाली प्रेमगाथाओ के लिए आदर्श रचना वन गई । दामोदर कवि सभवत. हिंदू कवि था और उसे सूफी भी कहने के लिए हमारे यहाँ कोई आधार नही है । परतु उसकी यह प्रेमकथा इतनी लोकप्रिय वन गई और इसकी रचना-शैली आदि का लोकमानस पर इतना अविक प्रभाव पडा कि उसके परवर्ती सूफी कवियो तक ने उसके द्वारा प्रयुक्त कथानक को अपनाकर तथा अन्य वैसे प्रेम सम्वधी वृत्तान्तो के भी आधार ग्रहण कर प्रेमाख्यानो का लिखना आरंभ कर दिया । उदाहरण के लिए 'हीर और राँझा' की प्रेमकहानी को लेकर अहमद कवि (सन् १६९३ ई०) और हामद (सन् १७७० ई०) ने भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की तथा वारिश शाह (सन् १७३८-१७९८ ई०) ने तो एक ऐसी प्रेमगाथा रच डाली जिसने उसके दोनो प्रेमियो को अमरत्व प्रदान कर दिया । इसी प्रकार 'मिरजा साहिवा' की प्रेमकहानी के आधार पर भी, कई कवियो ने वैसे प्रेमाख्यान लिखे जिनमे से जहाँगीर तथा शाहजहाँ वादशाहों के समकालीन पीलू कवि की रचना सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई और प्राय. उसके समकालीन कवि हाफिज वरखुरदार ने इस कहानी के अतिरिक्त 'युसुफ जुलेखा' तथा 'सस्सी पुन्नू' विपयक वृत्तान्तो को भी लेकर पृथक्-पृथक् प्रेमगाथाएँ लिखी । इसके सिवाय प्रेमाख्यानो के रचयिताओ मे हाशम (सन् १७५३–१८२३ ई०) तथा अहमद यार (सन् १७६८-१८४५ ई०) भी विशेप प्रसिद्ध हुए । हाशम की 'सस्सी पुन्नू' सम्वधी रचना सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई, किंतु उसकी 'सोहनी महिवाल', 'शीरी फरहाद' और 'लैला मजनू' वाली प्रेमकथाएँ भी कम महत्व की नही है । अहमद यार ने तो इस प्रकार की वीसो रचनाएँ प्रस्तुत कर दी जिनमे से 'हीर-राँझा', 'सस्सी पुन्नू', 'यूसुफ जुलेखा', 'लैला मजनू', 'सैफुल मुलूक', 'सोहनी महीवाल' तथा 'चदर वदन' आदि की गणना उत्कृप्ट सूफी प्रेमाख्यानो मे की जा सकती है । इन पंजावी सूफी कवियो की एक विशेपता यह रही कि इन्होने अधिकाश वैसे वगाली कवियो की भाँति किसी राज्याश्रय भी अपेक्षा नही की, न अपने सामने वहाँ तक फारसी रचनाओ तथा सूफी सिद्धान्तो तक के आदर्श का रखना उचित समझा । जहाँ तक दक्खिनी 'हिंदवी' के ऐसे कवियो ने किया इन्होने अपने लिए ऐसे कथानक भी चुने जो या तो अपने यहाँ लोकगाथाओ के रूप मे प्रसिद्ध हो चले थे अथवा प्रसिद्ध फारसी रचनाओ

मे सगृहीत हो चुके थे। उनके आधार पर प्रेमाख्यानो की रचना करते समय इन्होंने लोकजीवन सुलभ मार्मिक स्थलो के चित्रण को ही सर्वाधिक महत्व दिया। अतएव, कदाचित् ऐसा कहना भी अनुचित न होगा कि, जहाँ तक सूफीमत और इस्लामी सस्कृति-सम्वधी प्रचार-कार्य का प्रश्न है, इन पजावी सूफी कवियो ने भी इस विषय मे दक्खिनी 'हिंदवी' के वैसे कवियो की अपेक्षा अधिक उदारता से ही काम लिया।

(५)

उत्तरी भारत के उत्तर प्रदेश वाले क्षेत्र मे सूफी कवियो की प्रेमगाथाएँ, वगाल एव पंजाव की अपेक्षा लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पहले लिखी जाने लगी थी और दक्खिनी 'हिंदवी' की ऐसी रचनाओ का लिखा जाना भी इनसे प्राय. ८० वर्ष पीछे ही सभव हो सका होगा। उत्तर प्रदेश की हिंदी सूफी प्रेमगाथाओ मे से जो सर्वप्रथम रचना अभी तक उपलव्ध है वह 'चदायन' है जिसका रचनाकाल उपर्युक्त सन् ७७९ (हि०) वा सन् १३७७ ई० है। इसकी कोई पूरी प्रति अभी तक प्रकाशित नही है, किंतु इसका जितना अश आज तक मिल सका है उसके आधार पर इसके विपय मे हमे वहुत कुछ पता चल जाता है उसके आधार पर इसके विषय में हमे वहुत कुछ पता चल जाता है। इस प्रकार, हमे ऐसा अनुमान करने के लिए पर्याप्त साधन भी मिलता है कि ईसवी सन् की १४वी शती से लेकर आज तक की, लगभग छह सौ वर्षो की अवधि मे ऐसी अन्य अनेक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गई होगी जिन्हे हम, भारतीय साहित्यिक परपरा के आदर्शो पर निर्मित 'सूफी प्रेमाख्यान' का नाम दे सकते हैं। अव तक पायी गई ऐसी रचनाओ की सख्या भी कम से कम ३० वा ४० तक ठहरायी जा सकती है और इनमे कतिपय उन प्रेमाख्यानो को भी स्थान दिया जा सकता है जो वर्त्तमान राजस्थान एव विहार प्रान्तो में भी लिखे गए थे। उत्तर प्रदेश वाली ऐसी रचनाओ मे से काल क्रमानुसार जिस दूसरी प्रेमगाथा का नाम लिया जाता है वह शेख कुतवन की 'मिरगावति' वा 'मृगावती' है जिसकी रचना हिजरी सन् ९०९ अर्थात् सन् १५०९ ई० में हुई थी और जो इस प्रकार, 'चंदायन' से कम से कम सवा सौ वर्ष पीछे की सिद्ध होती है। इस लम्वे काल मे लिखी गई किसी ऐसी अन्य रचना का पता

को विदेश से जो प्रति फारसी लिपि मे उपलब्ध हुई है उसे भी सभवत सम्पूर्ण नही कहा जा सकता। डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के अनुसार डलमऊ के ठाकुर शिवमगल सिह के पास जो प्रति है वह देखने तक को सुलभ नही है। इसी प्रकार इसकी एक प्रति श्री रावत सारस्वत के भी पास है जो कदाचित अधूरी ही है जिसमे ४३८ कड़वक है। एक अन्य खण्डित प्रति के अमेरिका मे होने का भी पता चला है।

प्रो० अस्करी द्वारा सकलित किये गए कतिपय विवरणो के आधार पर 'चंदा-यन' के वर्ण्य विषय की एक रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है और इसके सम्बध मे हम एक अपनी कामचलाऊ धारणा भी बना सकते है। इसके सिवाय, इस विषय मे विशेष रुचि रखने वाले खोजी विद्वानो मे आजकल क्रमश जिज्ञासा की वृद्धि होते जाने के कारण, अनेक ऐसे साधन भी सामने आने लगे है जिनकी सहायता से हम इस समय इसके सम्बध मे कुछ अधिक विचार कर सकने की स्थिति मे आते जा रहे है। इस प्रकार, सभव है कि 'चदायन' की पूरी प्रामाणिक प्रति के प्रकाशित होने के पहले भी, हम वास्तविक बातो के निकट तक पहुँच जायँ। प्रो० अस्करी ने अपनी सगृहीत पक्तियो के आधार पर इस प्रेमाख्यान की कहानी का सक्षिप्त परिचय देते हुए वतलाया है कि "लोरक एक पराक्रमी ग्वाला था जो गौर वा गौरा का निवासी था और उसका विवाह मैना के साथ विधिवत् हो चुका था। किंतु वह सहदेव महर की पुत्री चदा के प्रति आसक्त हो गया जो वावन के साथ व्याही गई थी। चदा भी उसी प्रकार लोरक के प्रति अनुरक्त थी। ये दोनो रोहिनी से होते हुए हरदी की ओर चल पड़े और उन्हे ऐसा करते पाकर लोरक के भाई कुँवरु ने उन्हे उपालम्भित करना चाहा जो व्यर्थ सिद्ध हुआ। वथा चमार, राव रूपचद, असुर और एक मलाह जो चदा की ओर आकृष्ट हुए सभी, और स्वय वावन तक हरा दिये तथा मार डाले गए। कई लडाइयाँ हुई जिनमें लोरक वरावर विजयी होता चला गया, किंतु किसी रात को एक पाकड़ के नीचे सोती हुई चदा को साँप ने डँस लिया। फिर भी भगवती को दया आ गई और उन्होने उस शोकाकुल प्रेमी लोरक के निकट किसी गारुड़ वा ओझा को भेज दिया जिसने अपने मत्रवल द्वारा चदा की रक्षा की और उसे पुनर्जीवन प्रदान

कर दिया तथा फिर दोनों मिल गए । उसके कुछ वर्षों के अनन्तर अत में किसी भाट सुर्जन ब्राह्मण से यह समाचार पाकर कि उसकी विवाहित पत्नी की दशा दयनीय हो गई है, लोरक फिर उसकी ओर भी वापस आ गया[1] ।"

प्रो० अस्करी ने इसी प्रकार, उस लोकगाथा का भी सारांश दे दिया है जो विशेषकर भागलपुर के "अनेक स्थानो मे प्रचलित है और जो सर डब्ल्यू. डब्ल्यू. हटर के अनुसार, उत्तरी विहार के भागो मे 'वीर लोरिक के गीत' के रूप मे गायी जाती है । उनका कहना है, "लोरिक गौरा का निवासी था और दुर्गा भगवती का प्रिय भक्त भी था । उसकी पत्नी मजरी ने अपने पति को सहदीप महरा की पुत्री के साथ प्रेम करते देखा जो उसी गाँव का राजा था और जो जाति का कहार भी था । उसका नाम चनैन था । चनैन की ओर से उसे विरत करने मे यत्नशील वनी पत्नी एव माता के होते हुए भी लोरिक ने भगवती की कृपा से उसके साथ भेट कर ली । अंत मे, वे दोनो प्रेमी हरदी की ओर चल पड़े जो मधुपुर के इलाके में पड़ती है । किसी रात को एक पेड़ के नीचे सोते समय चनैन को साँप ने डँस लिया और वह मर गई जिस कारण दुखी होकर लोरक आग मे कूद पडा । परतु भगवती ने आकर उसकी रक्षा की और दोनो प्रेमी अपने मार्ग में फिर आगे वढ़े तथा महापात्र स्वर्णकार राजा के सेवको ने उन्हे जुए मे फँसा दिया । उन्होंने वहाँ लोरिक का सर्वस्व, यहाँ तक कि स्वय चनैन तक को जीत लिया । फिर उसने उस राजा को हराकर सभी कुछ वापस ले लिया तथा वहाँ से वे दोनो हरदी की ओर वढे जहाँ के राजा के साथ लोरिक की सात दिन तथा सात रात तक लडाई होती रह गई । भगवती ने उसे इस दशा मे, विजयी वनाया जव चनैन को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि अपनी प्रथम सतान का वलिदान कर दूंगी । लोरक ने हरदी के राजा हडंवर को जीत लिया और वह उस नगर में वारह वर्षों तक राज्य करता रहा । एक वार, जव उसने किसी वृद्धा स्त्री को अपने प्रवासी पुत्र के लिए प्रतीक्षा करते हुए देखा, उसे अपनी प्रथम पत्नी एव माता के प्रति अन्याय का स्मरण हो आया और वह इनके यहाँ लौट आया[2] ।" जिससे जान पड़ता है कि इस कथा

1 Mulla Daud's Chandain etc. p. 64.

2. Rare Fragments of Chandain etc. p. 9.

इधर नही चलता । इसके भीतर निर्मित केवल उपर्युक्त 'कदम राव व पदम'-का नाम लिया जाता है जिसका रचना-काल, उसके रचयिता 'निजामी' का हि० सन् ८६५–७ मे वर्तमान रहना मानकर[१], सन् १४०६ ई० के लगभग ठहराया जा सकता है और जिसके लिए यह भी कहा जा सकता है कि वह दक्षिण के वहमनी सुल्तानो के समय मे वहाँ की 'हिंदवी' मे लिखी गई थी । इस रचना की भी कोई पूरी प्रति उपलब्ध नही है जिस कारण, अपर्याप्त सामग्री के आधार पर इसकी मूल प्रेमकहानी के विषय मे भी कुछ नही कहा जा सकता, न यही बतलाया जा सकता है कि इसमे सूफीमत सम्बधी बातो का कहाँ तक समावेश किया गया है । यदि यह भी सूफी प्रेमगाथाओ की कोटि की ही ठहरायी जा सके तो केवल इतना और भी कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत की ओर भी, इसके अनन्तर 'कुतुब-मुश्तरी' के रचनाकाल (सन् १६०८ ई०) तक की लगभग डेढ सौ वर्षो की अवधि मे कोई अन्य वैसा प्रेमाख्यान नही लिखा गया होगा ।

मुल्ला[२] दाऊद की सूफी प्रेमगाथा 'चदायन' का उल्लेख सर्वप्रथम, कदाचित् 'नूरक चदा' के नाम से किया गया था और पहले हमे इस बात का भी निश्चित पता नही था कि उसके कथानक का सम्बध किसी पूर्व प्रचलित लोकगाथा से भी जोडा जा सकता है वा नही । हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले प्राय· इस रचना का नाममात्र लेकर ही सतोष कर लिया करते थे और इसका अस्तित्व सदिग्ध जैसा बना रहा । सन् १८५८ ई० मे प्रकाशित 'गजेटियर ऑफ दि प्राविंस ऑफ अवध' (भाग १) मे इस रचना का नाम 'चन्दैनी' के रूप मे उल्लिखित हुआ और वहाँ पर बतलाया गया कि फिरोज शाह तुगलक (सन् १३५१–८८ ई०) के समय डलमऊ (जि० रायबरेली) के मुल्ला दाऊद नामक कवि ने "भापा

१. नसीरुद्दीन हाशमी : दकन में उर्दू (सन् १९५२ ई०) उर्दू बाजार लाहौर पृ० ३३

२. दाऊद को मुल्ला के स्थान पर 'मौलाना' कहना अधिक संगत समझा गया है । (कल्पना, सितंबर ६१, पृ० १६)

मे चन्दैनी नामक ग्रथ का सम्पादन किया[1]" जिसके द्वारा इसके सम्बध मे कुछ अधिक स्पष्ट सकेत प्राप्त हो सका। परंतु जब तक इसकी किसी अधूरी अथवा पूरी हस्तलिखित प्रति का भी परिचय नही मिला तब तक इसके विषय मे कोरे अनुमान ही किये जाते रहे। अनेक ऐसी प्रतियो के पते बतलाये जाते थे और उन्हे पूरा वा अधूरा मात्र कहकर काम चलता कर दिया जाता था। पटना के प्रो० अस्करी ने[2] अपने एक अग्रेजी निबन्ध मे इस रचना का नाम 'चदायन' देते हुए, इसकी मनेर शरीफ से प्राप्त किसी अधूरी प्रति के आधार पर इसके विषय मे कुछ अधिक प्रकाश डाला। फिर, अपने एक दूसरे निबन्ध मे[3], उस परिचय को और भी अधिक स्पष्ट कर देने का यत्न किया। उनके इस द्वितीय निबन्ध मे, हमे इतनी और सूचना भी मिलती है कि उन्होने न केवल 'चदायन' की उक्त मनेर शरीफ वाली अधूरी प्रति की ही खोज की है, अपितु उन्होने इसकी भोपाल वाली सचित्र प्रति का सधान-सूत्र भी दे दिया है जिसके माध्यम से वह प्रति (बंबई म्युज़ियम' की ओर से क्रय की जा सकी है और वह इस प्रकार, अधिक प्रसिद्धि मे भी आ गई है। इसके अतिरिक्त ऐसी दो अन्य सचित्र प्रतियो का भी पता चलता है जो क्रमश लाहौर मे तथा काशी के 'कला भवन' में वर्त्तमान है। इसकी ऐसी कुछ अधूरी प्रतियो के आधार पर सपादित होकर यह रचना आगरा में प्रकाशित भी होने जा रही है। प्रो० अस्करी के ही अनुसार इस रचना की एक अन्य पूर्ण प्रति का पता हिंदी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय के श्री उदयशकर शास्त्री को लग चुका है जो नागरी अक्षरो मे लिखी गई है, किन्तु जो अधिक मूल्य माँगे जाने के कारण, आज तक क्रय नही की जा सकी है[4]। डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त

---

१. पृ० ३५५।

2. Prof H. Askarı : Rare Fragments of Chandain and Mrıgawatı.

3. Prof. H. Askarı 'Mulla Daud's Chandaın and Sadhans Maına Sat (Patna University Journal, 1960).

4. Do. p. 62.

को विदेश से जो प्रति फारसी लिपि मे उपलव्व हुई है उसे भी संभवत. सम्पूर्ण नही कहा जा सकता। डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के अनुसार डलमऊ के ठाकुर शिवमगल सिह के पास जो प्रति है वह देखने तक को सुलभ नही है। इसी प्रकार इसकी एक प्रति श्री रावत सारस्वत के भी पास है जो कदाचित अधूरी ही है जिसमें ४३८ कडवक है। एक अन्य खण्डित प्रति के अमेरिका मे होने का भी पता चला है ।

प्रो० अस्करी द्वारा सकलित किये गए कतिपय विवरणो के आधार पर 'चदायन' के वर्ण्य विषय की एक रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है और इसके सम्वध मे हम एक अपनी कामचलाऊ धारणा भी वना सकते है। इसके सिवाय, इस विषय मे विशेष रुचि रखने वाले खोजी विद्वानो मे आजकल क्रमश. जिज्ञासा की वृद्धि होते जाने के कारण, अनेक ऐसे साधन भी सामने आने लगे है जिनकी सहायता से हम इस समय इसके सम्वध मे कुछ अधिक विचार कर सकने की स्थिति मे आते जा रहे है। इस प्रकार, सभव है कि 'चदायन' की पूरी प्रामाणिक प्रति के प्रकाशित होने के पहले भी, हम वास्तविक बातो के निकट तक पहुँच जायँ। प्रो० अस्करी ने अपनी सगृहीत पक्तियो के आधार पर इस प्रेमाख्यान की कहानी का सक्षिप्त परिचय देते हुए बतलाया है कि "लोरक एक पराक्रमी ग्वाला था जो गौर वा गौरा का निवासी था और उसका विवाह मैना के साथ विधिवत् हो चुका था। किंतु वह सहदेव महर की पुत्री चदा के प्रति आसक्त हो गया जो वावन के साथ व्याही गई थी। चदा भी उसी प्रकार लोरक के प्रति अनुरक्त थी। ये दोनो रोहिनी से होते हुए हरदी की ओर चल पडे और उन्हे ऐसा करते पाकर लोरक के भाई कुँवरु ने उन्हे उपालम्भित करना चाहा जो व्यर्थ सिद्ध हुआ। वया चमार, राव रूपचद, असुर और एक मलाह जो चदा की ओर आकृष्ट हुए सभी, और स्वय वावन तक हरा दिये तथा मार डाले गए। कई लड़ाइयाँ हुई जिनमे लोरक वरावर विजयी होता चला गया, किंतु किसी रात को एक पाकड़ के नीचे सोती हुई चदा को साँप ने डँस लिया। फिर भी भगवती को दया आ गई और उन्होने उस शोकाकुल प्रेमी लोरक के निकट किसी गारुड़ वा ओझा को भेज दिया जिसने अपने मत्रवल द्वारा चदा की रक्षा की और उसे पुनर्जीवन प्रदान

कर दिया तथा फिर दोनो मिल गए। उसके कुछ वर्षों के अनन्तर अत में किसी भाट सुर्जन ब्राह्मण से यह समाचार पाकर कि उसकी विवाहित पत्नी की दशा दयनीय हो गई है, लोरक फिर उसकी ओर भी वापस आ गया[१]।"

प्रो० अस्करी ने इसी प्रकार, उस लोकगाथा का भी साराश दे दिया है जो विशेषकर भागलपुर के "अनेक स्थानो में प्रचलित है और जो सर डब्ल्यू डब्ल्यू. हटर के अनुसार, उत्तरी विहार के भागो मे 'वीर लोरिक के गीत' के रूप मे गायी जाती है। उनका कहना है, "लोरिक गौरा का निवासी था और दुर्गा भगवती का प्रिय भक्त भी था। उसकी पत्नी मजरी ने अपने पति को सहदीप महरा की पुत्री के साथ प्रेम करते देखा जो उसी गाँव का राजा था और जो जाति का कहार भी था। उसका नाम चनैन था। चनैन की ओर से उसे विरत करने मे यत्नशील वनी पत्नी एव माता के होते हुए भी लोरिक ने भगवती की कृपा से उसके साथ भेंट कर ली। अत मे, वे दोनों प्रेमी हरदी की ओर चल पड़े जो मधुपुर के इलाके में पड़ती है। किसी रात को एक पेड़ के नीचे सोते समय चनैन को साँप ने डँस लिया और वह मर गई जिस कारण दुखी होकर लोरक आग मे कूद पड़ा। परतु भगवती ने आकर उसकी रक्षा की और दोनो प्रेमी अपने मार्ग मे फिर आगे वढ़े तथा महापात्र स्वर्णकार राजा के सेवको ने उन्हे जुए में फँसा दिया। उन्होने वहाँ लोरिक का सर्वस्व, यहाँ तक कि स्वयं चनैन तक को जीत लिया। फिर उसने उस राजा को हराकर सभी कुछ वापस ले लिया तथा वहाँ से वे दोनो हरदी की ओर वढे जहाँ के राजा के साथ लोरिक की सात दिन तथा सात रात तक लड़ाई होती रह गई। भगवती ने उसे इस दशा में, विजयी वनाया जव चनैन को यह प्रतिज्ञा करनी पडी कि अपनी प्रथम सतान का वलिदान कर दूँगी। लोरक ने हरदी के राजा हडंवर को जीत लिया और वह उस नगर मे वारह वर्षो तक राज्य करता रहा। एक वार, जव उसने किसी वृद्धा स्त्री को अपने प्रवासी पुत्र के लिए प्रतीक्षा करते हुए देखा, उसे अपनी प्रथम पत्नी एव माता के प्रति अन्याय का स्मरण हो आया और वह इनके यहाँ लौट आया[२]।" जिससे जान पड़ता है कि इस कथा

1. Mulla Daud's Chandain etc. p 64.
2. Rare Fragments of Chandain etc. p. 9.

और 'चदायन' के मूल कथानक मे कोई विशेप अन्तर नही है ।

परतु, विहार प्रान्त मे ही प्रचलित इस कहानी के विविध रूपो को देखने पर पता चलता है कि इसका कलेवर वहुत वड़ा होगा। वहाँ इसे सावारणत 'लोरिकायन' का नाम दिया गया दीख पडता है । इसकी विशालता के विपय मे चर्चा करते समय. वहाँ पर यह भी कहा जाता है कि जैसे 'रामायण' के सात काण्ड है, उसी प्रकार 'लोरिकायन' के भी अनगिनत वा अगणित काण्ड है । किसी क्षेत्र मे इसके कोई अश विशेप गाये जाते है जो अन्यत्र इसके दूसरे अश प्रसिद्ध है और सम्पूर्ण गीत के जानकार गायक सभवत. कही भी नही मिल सकते अथवा कोई विरले ही हो सकते है। 'लोरिकायन' के कुछ खण्ड प्रकाशित भी हो चुके है, किंतु उन पर किन्ही आवुनिक रचयिता के नाम दिये गए दीख पड़ते है जिस कारण, कहा नही जा सकता कि उनका कितना अश प्राचीन रचना के साथ और कहाँ तक मेल खाता है तथा कितना सर्वथा नवीन एव काल्पनिक माना जा सकता है । 'लोरिकायन' के जो तीन खण्ड वहाँ पर प्रमुख रूप मे गाये जाते है वे 'सँवरू का व्याह,' 'लोरिक का व्याह' तथा 'हल्दी की लडाई' के नामो से प्रसिद्ध है और अधिक अनुसधान करने पर पता चलता है कि इनमें से प्राय. सभी के अनेक रूपान्तर भी वर्त्तमान होंगे[१] ।" श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने स्व-सपादित 'साधन-कृत मैना-सत' की भूमिका वाले अश मे विहार वाले 'लोरी चन्दैनी आख्यान' का जो साराश दिया है उसमे वावन को शिवधर नाम दिया गया दीख पडता है और वह चन्दैनी से विवाह कर लेने पर पार्वती के शापवश नपुसक हो जाता है । इसी प्रकार मझरिया वा मजरी यहाँ पर लोरी की विवाहिता पत्नी नही है, प्रत्युत एक ऐसी लडकी है जिसके साथ उसकी केवल सगाई हुई रहती है । चन्दैनी को यहाँ पर लोरी से एक पुत्र भी जन्म लेता है और लोरी घर वापस आने पर मजरी के पातिव्रत की परीक्षा लेता है । यहाँ पर लोरी के सम्वध मे यह भी वतलाया गया है कि उसकी सफलताओ के कारण इन्द्र को ईर्प्या होती है और वह इसे नण्ट करने

---

१. श्री विक्रमादित्य मिश्र : 'लोरिकायन का तुलनात्मक अध्ययन' भारतीय साहित्य (आगरा, अप्रैल, १९५९ ई०) पृ० १९-२०

के यत्न करता है, किंतु दुर्गा की सहायता के यह किसी प्रकार, अपने को बचा लेता है। अत में काशी के मणिकर्णिका घाट पर पत्थर के रूप में परिणत हो जाता है।[१]" भोजपुरी क्षेत्र में, साधारणत इस कथा का कुछ न कुछ ऐसा ही रूप गाया जाता जान पड़ता है।

परतु इसका एक अन्य छत्तीसगढी रूप भी है जिसके अनुसार 'लोरी' किसी धोबी के रूप मे पाया जाता है और एक धोबिन के द्वारा ही लोरी और 'चदा' के बीच प्रेम की बाते भी आगे बढती है और मझरिया (मजरी) यहाँ पर कोई महत्वपूर्ण भाग लेती हुई नही दीख पड़ती[२]। इसी प्रकार, एक अन्य छत्तीसगढी रूप के अनुसार बावन 'वीर बावन' के रूप मे आता है, दो सौ पचास गायों का दूध पीता है और वह चन्दैनी का पति है जिस पर आसक्त होकर वीर बथुआ नामक चमार उसे अपनाना चाहता है और वह अपनी सहायता मे इसके ऊपर विजय पाने वाले लोरिक रावत पर आसक्त हो जाती है। अन्त मे इन दोनो का प्रेम बढता है, दोनो निकल भागते हैं, वीर बावन इनका पीछा करता है, किंतु ये गौरागढ चले आते है[3]। छत्तीसगढी का ही एक तीसरा रूपान्तर भी प्रसिद्ध है जिसमे चन्दैनी, लोरिक की वशी का रव श्रवण कर उसके प्रति आसक्त होती है, उसके साथ झूला झूलती है तथा उसके साथ भागते समय इसे अनेक प्रकार के विघ्नों का सामना भी करना पडता है। छत्तीसगढ के क्षेत्र मे यही गाथा वहाँ की मौलिक प्रेमकथा समझी जाती है और वहाँ के रायपुर जिले मे 'आरग' नामक स्थान पर इन दोनो प्रेमियो का एक स्मारक भी पाया जाता है[४]। अतएव, जान पड़ता है कि मुल्ला दाऊद की रचना 'चदायन' का कथानक जितना विहार वाले रूप के निकट है उतना छत्तीसगढ़ी वाले के साथ उसका सम्बंध नही है। यह

१. पृ० ३८-९

२. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० ६४

3. Dr V. Elwin : Folk Songs of Chhattisgarh (Oxford University Press, 1946) pp. 342-70.

4. Do pp. 41-8 and 7-8.

सभव है कि इस कवि ने इसे विहार प्रान्त से ही लिया है अथवा उसे अपनाया हो जो इसके स्वय अपने निकट के अवधी क्षेत्र मे ही प्रचलित रहा हो और जो विहार वाले से वहुत कुछ मिलता-जुलता भी हो। श्री द्विवेदी द्वारा उद्धृत सारांग भी डॉ० एलविन की पुस्तक 'फोक सॉग्स ऑफ छत्तीसगढ' मे दिया गया दीख पडता है और वह शाहाबाद जिला (विहार प्रान्त) की ओर विशेष रूप मे प्रचलित वतलाया गया है[1]। उस लेखक ने वहाँ पर भी लिखा है कि मिर्जापुर के जिले मे प्रचलित इस प्रेमकहानी के अनुसार चन्दैनी को कोई महत्व नही दिया जाता। वहाँ पर लोरिक की प्रेमपात्री मजरी है जो सोन नदी पर अवस्थित 'अगोरी' नामक दुर्ग के राजा की दासी है और वह जाति की अहीरिनी है। उसे लेकर लोरिक और सँवरू दोनो भाई भाग निकलते है और मार्ग मे अपनी वाधाओं पर विजय पाते हुए अत मे सफल हो जाते है। क्रुक ने इस कहानी के प्रसग मे, यह भी वतलाया है कि 'मर्कडे पास' के निकट एक चट्टान दिखलाया जाता है जो लोरिक द्वारा हाथी के निहत होने का स्मारक समझा जाता है[2]। काशी के निकट सारनाथ मे भी एकाध ऐसे टीले दिखलाये जाते है जिनके साथ लोरिक की कथा जोड़ी जाती है। लोरक और चदानी के प्रेमव्यापारो की एक अन्य कहानी हैदरावाद (दक्षिण) की ओर भी प्रचलित है जिसके आधार पर किसी कवि ने 'मसनवी किस्सा मैना सतवती' की रचना की है तथा जिसके अनुसार लोरक और उसकी प्रेमपात्री मैना निर्धन हो कर कही चल निकलते है और लोरक, पशु-चारण करते समय, चदा के प्रेम मे फँस जाता है तथा इसे भी ले भागता है[3]।

इस प्रकार लोरक एव चन्द्राणी वा चदा की प्रेमकहानी के कई अन्य भी रूप प्रचलित हो सकते है। यहाँ पर उल्लेखनीय केवल इतना ही है कि इसके

---

1. Folk Songs of Chhatisgarh pp. 340-1.
2. Do. p. 34
३. श्रीराम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य (हैदरावाद १९५४ ई०) पृ० ३७३-८।

नायक लोरक का सम्बंध दो स्त्रियों के साथ बतलाया जाता है जिनमे से मैना, मजरी वा मञ्जरिया या तो उसके साथ विधिवत् ब्याही गई रहती है अथवा उसके साथ उसकी सगाई मात्र ही हुई रहती है। इनमे से किसी भी दशा मे वह चंदा, चदैनी वा चद्राणी नामक सुदरी के प्रति भी आसक्त हो जाता है और उसे लेकर भागते समय कई बाधाओं का सामना करता है। अत मे, सबके ऊपर विजय पाकर या तो दोनो के साथ सुखी बन कर रहता है अथवा किसी प्रकार नष्ट हो जाता है। इसके सिवाय, इस कथा के सदर्भ मे एक बात यह भी सूचित होती है कि लोरक की प्रथम प्रेमपात्री वा पत्नी उसके प्रति अधिकतर 'सत' वा पातिव्रत धर्म के अनुसार चलती हुई दीख पड़ती है, जहाँ दूसरी का प्रेम प्रधानत. वासना पर ही आश्रित रहा करता है तथा इसे प्राप्त करने के लिए लोरक को विशेष प्रयास भी करना पड़ता है। तदनुसार, यदि इन दोनों दशाओ की प्रेमपद्धति पर विचार किया जाय तो, हम यह भी कह सकते है कि इसका मैना वाला अग अधिकतर हिंदू प्रेमभावना के अनुकूल है, जहाँ चदावाला सूफी प्रेमसाधना को उदाहृत करने का अधिक उपयुक्त साधन ठहराया जा सकता है। मुल्ला दाऊद ने कदाचित् इसी कारण, इस कथा के चंदा वाले अंश को ही अधिक महत्व दिया है। उन्होंने अपनी रचना का नाम तक 'चदायन' रख दिया है जिसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है उनके समक्ष अपनी सूफी भावना ही काम करती रही होगी। प्रो० अस्करी द्वारा उद्धृत पंक्तियो के अनुसार मुल्ला दाऊद अपनी रचना को किसी मलिक नाथन के कहने पर प्रस्तुत करते हैं जो इसकी प्रेम-कहानी से संभवत स्वयं भी परिचित रहा करता है, किंतु जिसके सम्बंध मे हमें कुछ अधिक पता नही चलता। अपने निबंध की पादटिप्पणी मे उन्होंने किसी 'मौलाना नाथन' की चर्चा की है जिसका प्रसग, १४वी शताब्दी वाले बिहारी सूफी हुसेन नौशाह तौहीद की जीवनचर्याओ का वर्णन करते समय किसी 'मूनी-सुल कुलूब' नामक पुस्तक मे आया है, किंतु वह 'मलिक नाथन' से भिन्न भी हो सकता है[1]। यदि उसका 'मलिक' होना उसके पूर्व पुरुषों की किसी पदवी मात्र

1. Rare Fragments of Chandain etc. p. 12.

का ही सूचक हो, जैसा उसके परवर्ती मलिक मुहम्मद जायसी के भी विषय में कहा जाता है तो, यह भी सभव हो सकता है कि वह 'मौलाना' भी रहा होगा, जैसा कई मुसलमानो का उनके धर्माचार्य होने पर ही होना समझा जाता है। जो हो, प्रो० अस्करी द्वारा अपने दूसरे निबध के साथ प्रकाशित कतिपय चित्रो में से कुछ मे मुल्ला दाऊद के भी चित्र दिये गए जान पड़ते हैं और इनमे से एक के साथ किसी एक ऐसे व्यक्ति का भी चित्र है जिसके 'मलिक नाथन' होने का भी अनुमान किया जा सकता है[1]। शेख नसीरुद्दीन महमूद चिरागे देहली (मृ० हि० ७५७-सन् १३५६ ई०) के किसी कथन से सिद्ध होता है कि उनके एक मित्र पटना के कोई नाथू थे जिन्होने उन्हे उपवास के समय दो रोटियाँ दी थी और जो, मौलाना दाऊद के समकालीन भी हो सकते हैं।[2] यहाँ पर मुल्ला दाऊद के सामने एक 'रिहल' वा रेहल पर कोई 'कुरान शरीफ' अथवा किसी अन्य धर्मग्रथ जैसी पुस्तक रखी हुई दीख पडती है। उसकी दूसरी ओर सभवत. 'मलिक नाथन' ही बैठा है जिसकी मुख-मुद्रा से उसका किसी बात को सुनने के लिए सावधान रहना ही सूचित होता है। मुल्ला दाऊद के उठाये हुए हाथ की किसी छोटी-सी छडी जैसी वस्तु से यह भी प्रतीत होता है कि ये उसे अपनी चेष्टाओ द्वारा कही जाने वाली बातों को भलीभाँति समझाते भी जा रहे है जिससे उस 'मलिक नाथन' का इनका शिष्य तक होना अनुमान किया जा सकता है। मुल्ला दाऊद की दाहिनी बाँह मे कोई माला भी लटकती दीख रही है जो इनके एक अन्य चित्र मे बायी बाँह मे लटकी है और इनके सिर पर कोई कुलाहदार पगडी भी पायी जाती है जिसकी आकृति, इनके तीन चित्रो तक मे ठीक एक ही प्रकार से अकित की गई जान पडती है। इनके तीसरे चित्र मे भी पहले चित्र की जैसी एक 'रिहल' है जिस पर रखी हुई पुस्तक के किसी पन्ने को ये झुककर पढ रहे है और वह इनके हाथ मे है। ऐसे ही चित्रो मे से एक मे 'चदायन' की प्रमुख नायिका चदा तथा उसकी सौत मैना के संभवत. किसी झगड़े का भी चित्रण

1. Mulla Daud's Chandain etc p. 71.
२. प्रो० हबीब का निबंध Islamic Culture, Aligarh

किया गया जान पडता है । यहाँ पर मैना क्रुद्ध होकर उसके सिर के बालो को नोचने तक मे प्रवृत्त दिखलायी गई हैं जिससे उस रचना की किसी ऐसी घटना पर भी प्रकाश पड़ सकता है तथा इसके साथ यह भी अनुमान किया जा सकता है कि दोनो सपत्नियों मे परस्पर मेल नही रहा करता था। इसके सिवाय चदा यहाँ पर उत्तेजित नही दिखलायी गयी है जिससे यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि रचना वाली मूल घटना मे न केवल मैना की ओर से आक्रमण कराया गया होगा, अपितु चदा को उससे अधिक सभ्य अथवा निर्दोष तक भी सिद्ध किया गया होगा ।

उपर्युक्त 'साधन कृत मैनासत' की भूमिका वाले अश मे श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने उस रचना विषयक धारणा का 'चदायन' की कहानी अथवा मुल्ला दाऊद की इस नाम वाली कृति मे पीछे से जोड दिया जाना अनुमान किया है। उन्होंने यहाँ तक भी कल्पना कर ली है कि यह कार्य कही दिल्ली के आसपास किया गया होगा, क्योंकि भोपाल वाली प्रति भी "दिल्ली से आई थी"[1] और तदनुसार इस समय "जो कुछ प्राचीनतम प्राप्त है सन् १५०० ई० के लगभग का मैनासत-सयुक्त पाठ है"[2] जैसा कभी पहले नही हो सकता था। इसी प्रकार उनकी यह भी धारणा है कि बगाली कवि दौलत काजी ने अपनी रचना प्रस्तुत करते समय जिस प्रति का उपयोग किया होगा वह इसके "सभवतः तीसरा सस्करण की रही होगी और वह 'मैनासत' के नाम से दौलत काज़ी के पास आराकान पहुँचा[3] होगा।" श्री द्विवेदी ने अपनी इस धारणा की पुष्टि मे अला-ओल कवि की कुछ पक्तिया भी उद्धृत की है और कहा है "वह स्पष्ट लिखता है कि पहले खण्ड मे चन्द्राणी कथा है और शेष खड मे मैना की कथा है अर्थात् ये दोनो कथाएँ स्वतत्र है जो एक मे गूँथ दी गई है।"[4] परतु जान पडता

१. साधन कृत मैनासत (ग्वालियर, सन् १९५९ ई०) पृ० ३७।
२. वही, पृ० ३९
३. वही, पृ० ४१
४. वही, पृ० ४७

है कि श्री द्विवेदी ने इसके साथ कतिपय अन्य वातो की ओर भी ध्यान नहीं दिया है जिनके आधार पर इससे भिन्न परिणाम भी निकाला जा सकता है और कहा जा सकता है कि उस कवि ने अपना कार्य पूरा नही किया, प्रत्युत वह उसे अधूरा छोड कर ही मर गया और उसके शेप अश को (जिसका प्रस्तुत कर दिये गए अश से सर्वथा 'स्वतंत्र' होना अनिवार्य नही कहा जा सकता) अलाओल ने समाप्त किया। दौलत काज़ी कवि की उक्त रचना 'सती मयनावती और लोर चन्द्राणी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है और उसके इस नाम के पूर्वार्द्ध से तथा उसकी 'प्रशस्ति' वाले अश की कतिपय अतिम पक्तियो से भी पता चलता है कि दौलत काजी का आश्रयदाता 'महामति' अशरफ खाँ 'लोरक राज मयनार भारती' अर्थात् लोरक और मैना की कथा को ही श्रवण करने के लिए उत्सुक था और वह जानना चाहता था कि "कौन मते हइल मयना पतिव्रता सती" किस प्रकार मैना ने अपने पातिव्रत धर्म का सफलता पूर्वक निर्वाह किया। उसके अनुसार साधन कवि ने इसे "ठेठा चौपाइ या दोहा" मे कहा था और उसकी 'गोहारी भापा' को वहाँ पर कोई विरले व्यक्ति ही समझ पाते थे। इस कारण दौलत काजी ने उसकी अभिलापा की पूर्ति के लिए, इस "मयनार भारती" अर्थात् मैना की कथा को ही 'पाचाली छद' मे निर्मित कर दिया। इसी प्रकार उक्त रचना के प्रथम खड की कतिपय अतिम पक्तियो द्वारा भी अशरफ खाँ के मुख से यही प्रश्न कराया गया मिलता है "जिस समय तक लोर वा लोरक चन्द्राणी के देश मे प्रवासित रहा तव तक मयनावती अपने यहाँ क्या करती रही ?" और "किस प्रकार वह लौट कर फिर 'मयनावती राज्य' मे आया ? तथा इसी के साथ, वहाँ पर यह भी पूछा गया दीख पड़ता है कि लोर मयना और चन्द्राणी फिर अत में, किस प्रकार एक स्थान पर एकत्र हो गए। ऐसी दशा में, यदि उस रचना के अतर्गत किसी वाहर से जोडे गए अश के विपय मे अनुमान किया जा सकता है तो वह स्वभावत, चन्द्राणी वा चदा की कहानी वाला ही अश हो सकता है जिसे दौलत काजी ने उसके खड मे कदाचित् प्रासगिक रूप मे स्थान दे दिया है। यह अनुमान इस प्रकार भी पुष्टि पा सकता है कि दौलत काजी की रचना का स्पष्ट आधार सावन की ही कृति

है जिसकी उपलव्व प्रतियों मे कहीं पर चदा का प्रसग विस्तृत रूप मे दिया गया नही दीख पडता, प्रत्युत एक अन्य एव भिन्न कथा का ही समावेश किया गया पाया जाता है। विश्व भारती के डॉ० सत्येन्द्र नाथ घोषाल ने साधन कृत 'मैना सत' से एक पद्य उद्धृत करके उसके बगला अनुवाद का दौलत काजी की रचना मे लगभग अक्षरश. पाया जाना दिखलाया है जिससे भी इस बात को ही समर्थन मिलता है।[1] इस कवि की प्रेमगाथा मे प्रथम खड के अतर्गत लोरक और चन्द्राणी की कथा आती है और दूसरे खड मे मयनावती के विरह का वर्णन, बारहमासे के माध्यम से आषाढमास से लेकर वैशाख तक चलता है और 'ज्येष्ठ-मास परवेश' का अवसर आने पर अचानक वद हो जाता है और उसे फिर अलाओल पूरा करता है।

जहाँ तक मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' वाली मूल रचना के अतर्गत मैनासत के प्रसग के रहने वा न रहने का प्रश्न है इसका अतिम समाधान कदाचित् तव तक नही किया जा सकता जव तक उस कवि द्वारा रचित मूल प्रति वा उसकी प्रामाणिक प्रतिलिपि न मिल सके। परतु अव तक उपलव्व प्रतियो के आधार पर इन दोनो कथाओं के आरभ से ही एकत्र पाये जाने के विषय मे कोई प्रत्यक्ष सन्देह नही किया जा सकता, न ऐसा करने के लिए यहाँ पर कोई स्पष्ट सकेत ही दीख पडता है। प्रेमाख्यानो के अतर्गत किसी प्रेमी नायक का अपनी विवाहिता पत्नी के होते हुए भी किसी अन्य सुदरी के प्रति आकृष्ट हो जाना तथा

---

१. एक एक करत (रटत) जिउ देऊं। जग दूसर को नांव न लेऊं॥
फाटहि तासु नारि को हिया। एक छांड़ि जेहि दोसर किया॥
—साधन का मैनासत (जिसका पाठ श्री द्विवेदी द्वारा संपादित पुस्तक (पृ० १८१ पर) किंचित भिन्न है)
एक एक करि मुइ दिमु निज प्राण। जगते दोसर नाम न लइमु आन।
फाटउ कसे नारीर हृदय दारुण। एक छाड़ि भावय ये दोसरक गुन॥
—दौलत काजी की रचना
Visvabharati Annals, Volume IX (1959) p 18.

उसे प्राप्त करने के लिए यत्न करने लगना बहुत अधिक पाया जाता है और कही-कही तो उसकी वैसी पत्नियो की सख्या एक से अधिक भी दीख पडती है। वैदिक साहित्य के राजा पुरुरवा तथा महाभारत के राजा दुष्यत विवाहित रहने पर तथा अनेक रानियो के रनिवास मे होते हुए भी, क्रमश उर्वशी एव शकुतला के प्रति प्रेम कर सकते थे। उनकी कहानियो को लेकर प्रेमगाथात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की जा सकती थी। इसके उदाहरण मध्यकालीन इतिहास मे भी कम नही मिलेगे, जहाँ पर अपने पति के इस प्रकार प्रवास मे जाने के कारण पूर्व पत्नियो का विरहिणी बन कर झूरना तक दिखलाया गया रहता है। लोरक वा लोरिक को प्राय किसी राजा वा वैसे ही समर्थ व्यक्ति के रूप मे दिखलाया भी जाता है तथा भोजपुरी क्षेत्र से लेकर छत्तीसगढ तक पायी जाने वाली उसकी लोकगाथाओ के अतर्गत, कदाचित् कोई भी ऐसा उदाहरण न मिले जहाँ पर केवल चदा के ही साथ उसके प्रेमव्यापार का वर्णन किया गया हो तथा मैना वा मजरी के प्रसग का सर्वथा त्याग कर दिया गया हो। हाँ, इतना अवश्य है कि हैदराबाद (दक्खिन) की ओर पायी गई एकाध ऐसी रचनाओ मे चदा वाले अश का समावेश किया गया नही दीख पडता और उनमे वर्णित कथा प्रधानत मैना के प्रसग तक ही सीमित रह जाती जान पडती है। अतएव, यदि किसी प्रकार इस प्रेम-कहानी का प्राचीनतम रूप वह दक्षिण वाला ही सिद्ध किया जा सके तो यह अनुमान करना भी अनुचित नही कहा जायगा कि लोरक एव मैना के प्रेम-प्रसग अथवा कम-से-कम मैना के ही 'सत प्रसग' की कथा सर्वप्रथम अस्तित्व मे आयी होगी और चदा की कथा पीछे जोड दी गई होगी। इसके सिवाय हमे, इस सम्बध मे इतना और भी अनुमान कर लेने का आधार मिल सकेगा कि मैना एव चदा वाली दोनो कथाओ के एक साथ मिल जाने के सभवत पीछे ही मुल्ला दाऊद ने अपना प्रेमाख्यान रचा भी होगा। इस प्रसग मे एक यह बात भी उल्लेखनीय है कि प्रवासी नायको तथा उनके विरह मे घर पर झूरने वाली उनकी विरहिणी पत्नियो की कथाओ का स्वतत्र रूप से निर्मित होता आना कई अपभ्रश मे रचित कृतियो जैसे 'नेमिनाथ फाग', 'सदेशरासक', 'वीसलदेवरास' आदि से भी सिद्ध किया जा सकता है। अतएव, इस प्रकार की रचना-शैली के अनुसार

लोरक एक मैना की प्रेमकहानी का सर्वप्रथम रचा गया होना अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता, न यही असभव माना जा सकता है कि चदा वाली कथा को उसके साथ पीछे मिला दिया गया होगा। परतु यदि ऐसा सिद्ध नही किया जा सकता तो यह स्वीकार कर लेने मे भी कोई हानि नही कि पूरी कथा सभवत आरभ से ही निर्मित होकर प्रचार में आयी होगी और उसके विभिन्न रूप क्रमश. पीछे बनते चले गए होगे जैसा लोकगाथाओ द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है।

लोरक वा लोरिक की कोई न कोई कथा कदाचित् बहुत पहले से ही प्रचलित रहती चली आई है और न केवल उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश, हैदराबाद (दक्षिण), राजस्थान, बिहार एव बंगाल तक पाये जाने वाले विविध लोकगीतो मे, अपितु सभवत. सर्वसाधारण मे खेले जाने वाले अनेक नाट्य प्रसगो मे भी इसके किसी न किसी रूप के उपलब्ध होने का अनुमान किया जा सकता है। चौदहवी ईसवी शताब्दी मे वर्तमान मैथिल कवि ज्योतिरीश्वर शेखराचार्य की प्रसिद्ध रचना 'वर्णरत्नाकर' मे एक स्थल[१] पर 'लोरिक नाच्यो' का उल्लेख किया गया मिलता है जिसकी रचना का ठीक समय यदि सन् १३२६ ई० मान ले तो, 'चदायन' उसके केवल ५२ वर्ष ही पीछे निर्मित हुई होगी और इस प्रकार मुल्ला दाऊद के जीवन-काल मे भी वैसी बातो का प्रसिद्ध रहना असभव नही कहला सकता।

यह लोरक वा लोरिक मूलत. कौन था ? वह कोई ऐतिहासिक पुरुष था अथवा यो ही यहाँ की लोकगाथाओ में प्रसगवश प्रवेश पा जाने वाले ऐसे कतिपय वीरो मे था जिनके विषय मे अनेक पौराणिक वा परपरागत कथाएँ प्रचलित है ? इसका तब तक उत्तर नही दिया जा सकता, जब तक इस सम्बध मे पूरा अनुसधान-कार्य न किया जाय। यो तो इसका सम्बध, नामसाम्य के आधार पर, उस भूमि के साथ भी जोडा जा सकता है जिसे टाल्मी ने समुद्र तट से भीतरी क्षेत्र तक फैली सिंध से भडौंच तक की भूमि बतलाकर 'लारिके' (Larike) का नाम दिया है और जिसकी राजधानी का उज्जयिनी होना भी कहा है।[२] अथवा

१. दे० अध्याय १ वाले प्रथम पैरा के अंत में।

२. डॉ० मोतीचन्द : सार्थवाह (बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, सन् १९५३ ई०) पृ० १०५।

यदि हम चाहे तो, लोरक के कथा के किसी न किसी अश की व्याख्या खगोल-सम्बधी घटनाओ से भी की जा सकती है, किंतु हमारे पास अभी तक ऐसे अनुमानो को भी सार्थक रूप देने का साधन नही है। इसमे सन्देह नही कि यह प्रसग बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रहता आया है और एक विस्तृत क्षेत्र मे लोकप्रिय भी हो जाने के कारण, इसके विभिन्न रूपो की सृष्टि हो गई है।

लोकगीतो, लोकगाथाओ अथवा लोकनाट्यो के माध्यम से प्रचलित लोरक, चदा एव मैना-सम्बधी कथा का आरभ कहाँ, कब, किस के द्वारा तथा किस रूप मे किया गया और इसका कौन-सा मूल आधार रहा इसका निर्णय करना अभी अत्यन्त कठिन जान पडता है। अभी तक उपलब्ध सामग्री को देखते हुए हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते है कि इसके कथानक को लेकर सर्वप्रथम प्रबन्धात्मक रचना प्रस्तुत करने का प्रयास कदाचित् मुल्ला दाऊद ने ही किया होगा। उन्होने इसे कहाँ तक प्रचलित कथा के अनुसार लिखा तथा कहाँ तक इसमे अपनी कल्पना का प्रयोग किया इसके विषय मे कहा नही जा सकता। परन्तु इतना मान लेने मे कदाचित् सत्य से अधिक दूर जाना नही कहा जा सकता कि उन्होने इसे अपने मत प्रचार का साधन बनाने का विचार भी अवश्य किया होगा तथा ऐसा करते समय, उन्होने इसके अतर्गत कतिपय तदनुकूल बातो का समावेश भी कर दिया होगा। मुल्ला बदायूँनी (सन् १५४०–९६ ई०) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मुन्तख़िबुत् तवारीख़,मे इसके सम्बध मे लिखा है "सन् ७७२ हि० (सन् १३७० ई०) मे खां जहाँ मकबूल का देहान्त हुआ जो फीरोजशाह तुगलक का वजीर था और उसकी जगह उसका पुत्र जूनाशाह नियुक्त हुआ और हिंदी की मसनवी 'चदायन' जिसमे लोरिक एव चदा की प्रेमकहानी दी गई है और जो सचमुच प्रेरणा प्रदान करने वाली है उसको मुल्ला दाऊद ने उसके (जूनाशाह के) ही नाम पर निर्मित की। इस क्षेत्र मे यह इतनी प्रसिद्ध है कि इसकी प्रशसा करने की आवश्यकता नही प्रतीत होती। एक अवसर पर मख़दूम शेख़ तकी उद्दीन वायज रब्बानी ने इसके कुछ अश पढे जिसे सुनकर लोग एक विचित्र प्रकार के आनन्द मे मग्न हो गए। जब उस समय के कुछ व्यक्तियो ने शेख़ से इस मसनवी को काम मे लाने का कारण जानना चाहा तो उन्होने उन्हे बतलाया कि यह सारी की सारी रचना ईश्वरीय

सत्य एवं गौरव से भरपूर है, गभीर साधको वा जानकारो के लिए आनन्ददायक है तथा उनके उल्लासपूर्ण चिन्तन के लिए भी उपयुक्त है। इसके सिवाय हम इसे कुरान शरीफ की कतिपय 'आयतों' और 'हिंद' के मधुर सगीत के अनुकूल भी पाते है। इस समय भी इस रचना के सरस गीतो का गान करके लोग श्रोताओं के हृदयो पर अपना अधिकार जमा लिया करते है[१]।" इस प्रकार जान पडता है कि इस इतिहास लेखक तथा इसके प्रसिद्ध समसामयिक सम्राट् अकबर राज्य-काल (सन् १५५६–१६०५ ई०) मे यह रचना बहुत लोकप्रिय रही होगी। पता चलता है कि कदाचित् इसके पहले ही, अब्दुल कद्दूस गगोही (सन् १४५६–१५३७ ई०) ने 'चदायन' का फारसी अनुवाद भी आरभ किया था, किंतु वह बहलोल लोदी एव हुसेनशाह शर्की की किसी लड़ाई के समय नष्ट हो गया। इसकी चर्चा उनके पुत्र शाह रुकनुद्दीन ने अपनी रचना 'लतायफे कुद्दूसिया' मे भी की है जिसे उसने अपने पिता के सम्बध मे लिखी है[२]। श्री नसीरुद्दीन हाशमी की पुस्तक 'दकन मे उर्दू' मे कहा गया है कि उधर के गवासी नामक कवि (१७ वी शताब्दी) ने भी अपनी एक हिंदवी मसनवी 'चदा और लोरक' की रचना किसी फारसी ग्रथ के ही आधार पर सन् १०३५ हि० अर्थात् सन् १६२५ के पहले ही होगी[३], किंतु इसकी उस मूल पुस्तक का भी कोई पता नही चलता। गवासी की ही एक उपलब्ध रचना 'मसनवी ग़वासी दकनी' की कुछ पक्तियो के "तू चदा मै लोरक हूँ नौकर तेरा[४]" जैसे अशो के आधार पर कहा जा सकता है कि उसके अतर्गत

1. Rare Fragments etc. के पृ० ७ पर उद्धृत।
२. शाह रुकनुद्दीन के अनुसार कुद्दूसी ने मूल पुस्तक की ये पंक्तियाँ भी दी थी—
"ऊँच बिरख बहुर लाग अकासा। हाथ चढ़े को नाहीं आसा।
कह जो कथ को बाँह पसारे। तरवर डाल झुकै को पारे॥
रैन दिवस बहुत रखवारा। नैनन देख जाय सुमारा॥"
३. लाहोर (सन् १९५२ ई०) संस्करण, पृ० ७८।
४. श्रीराम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य (हैदराबाद सन् १९५४ ई०) पृ० २८७।

भी लोरक चंदा वाले ही प्रेमाख्यान की कथा कही गई होगी अथवा उसके किसी अंश का वर्णन किया गया होगा।

मुल्ला दाऊद के पीर के बारे में इतना अवश्य पता चलता है कि निजामुद्दीन औलिया के खलीफा खास नसिरुद्दीन अवधी 'चिराग देहली' के भाजे खलीफा शेख़ जैनुद्दीन थे जिनकी चर्चा अब्दुल हक और प्रो० हबीब ने की है[1]।

मुल्ला दाऊद की रचना 'चंदायन' के अनन्तर लिखी गई किसी उत्तरी भारत की हिंदी प्रेमगाथा का सूफी कवियों द्वारा लिखे जाने का पता सवा सौ वर्षों तक नहीं चलता और उस समय के पीछे सन् १५०३ ई० में निर्मित शेख़ कुतबन की 'मृगावती' ही अभी तक उपलब्ध है। परंतु, संयोग की बात है कि इस रचना की भी पूरी प्रति अभी तक नहीं मिल सकी है, अथवा कम से कम कहीं से प्रकाशित नहीं हो पाई है। इसकी आज तक प्राप्त अधूरी प्रतियों के आधार पर जिस कथानक का अनुमान किया जा सका है वह इस प्रकार है—"चन्द्रगिरि के राजा गनपति देव का पुत्र राजकुँवर आखेटप्रिय था, जिस कारण एक दिन उसने किसी सतरंगी हरिणी के पीछे अपना घोड़ा डाल दिया। परंतु उसका वह शिकार किसी सरोवर में छिप गया जिसमें इसने स्नान किया और उसकी खोज में व्यस्त हो गया। इधर इसके साथी राजा के यहाँ लौट आये और उनसे अपने पुत्र की दशा का परिचय पाकर उसने स्वयं जंगल में जाकर उसे समझाना चाहा। परंतु जब राजकुँवर वापस जाने को तैयार न हुआ तो उसने उक्त सरोवर के निकट इसके लिए कोई मन्दिर बनवा दिया। राजकुँवर वहीं पर उस हरिणी के लिए व्याकुल पड़ा रहता था। तत्पश्चात् किसी दिन उसमें स्नान करने के लिए सात अप्सराएँ आयी जिन्हें उड़ने तथा अपना रूप परिवर्तित कर देने की कला का अभ्यास था। राजकुँवर ने उनमें से एक अर्थात् मृगावती के प्रति आकृष्ट होकर उसे अपनाना चाहा, किंतु वह उड़ गई। फिर, किसी दूसरे दिन उनके वहाँ आने पर इसने मृगावती के वस्त्र छिपा दिये जिससे विवश होकर वह इसके समक्ष प्रकट हुई और इसने उससे अपनी दशा का वर्णन किया। मृगावती भी इस पर प्रेमासक्त हुई

१. 'अख़बारुल अख़ियार' और नसीरुद्दीन पर प्रो० हबीब की पुस्तक देखिये।

और दोनो ने फिर मन्दिर मे जाकर प्रेमालाप किया तथा मृगावती ने अपने हरिणी होने की भी चर्चा की। इस प्रकार दोनो वहाँ से चन्द्रगिरि भी चले आए और आनन्दपूर्वक रहने लगे। परंतु एक दिन अपने छिपाये गए वस्त्र को पाकर मृगावती वहाँ से उड़ गई और सेविका को अपना पता वतला कर अपने पिता रूप मुरारि के यहाँ कचनपुर चली गई। फलत राजकुँवर उसके विरह मे फिर दुखी हो गया और सेविका से संकेत पाकर एक दिन वह योगी के वेश मे निकल पडा। मार्ग मे इसने समुद्र से घिरे हुए किसी पहाड़ पर रुक्मिनी नामक सुदरी को किसी राक्षस के चगुल से छुडाया और उसके पिता ने इसका व्याह उसके साथ कर दिया। इसी वीच मृगावती के पिता का देहान्त हो चुका था और वह स्वयं उसके सिंहासन पर आसीन थी। राजकुँवर कचनपुर पहुँचकर उसके यहाँ गया, उससे मिला तथा उसके साथ वहाँ पर १२ वर्षो तक रहकर दो पुत्रो को भी जन्म दिया। इधर इसके पिता गनपति देव इसके लिए चिन्तित हो रहे थे, जिस कारण उन्होंने इसकी खोज मे अपने पुरोहित को भेजा। यह उसके कहने पर मृगावती के साथ अपने घर वापस आ गया। मार्ग में इसने रुक्मिनी को भी अपने साथ ले लिया और यहाँ दोनो सहित भोगविलास करने लगा। परंतु यहाँ, किसी दिन आखेट करते समय, राजकुँवर हाथी से गिरकर मर गया और इसकी दोनो ही रानियाँ इसके शव को लेकर सती हो गईं।

शेख़ कुतवन ने अपनी इस रचना का निर्माण-काल (सवत् १५६० तथा सन् ९०९ हि० अर्थात् सन् १५०३ ई०) भी दिया है और वतलाया है कि इसकी कथा कदाचित् पहले से ही प्रचलित रही जिसे उसके 'अर्थ' को भी खोलते हुए उसने दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल आदि के द्वारा लिख दिया। ऐसा करते समय, उसने इसके अतर्गत देशी शब्दो एवं मुहावरो के भी प्रयोग कर इसको वहुत आकर्पक वना दिया। इस कवि ने अपने 'पीर' का नाम शेख़ वुढन दिया है तथा 'शाहे-वक्त' का नाम भी 'साहे हुसेन' वतलाकर उसके 'छत्रसिंघासन' का 'छाजा' होना कहा है। इस वादशाह वा सुलतान को शेख़ कुतवन ने एक महादानी, धर्मात्मा एव ऐश्वर्य सम्पन्न भी ठहराया है। इसे कर्ण एव युधिष्ठिर तक का समकक्ष वतलाते हुए इसकी इतनी प्रशसा कर दी है जिससे इसके विपय मे ठीक-ठीक पता लगा

पाना कठिन हो जाता है। कुछ लोगो ने इसे शेरशाह का पिता हुसेन समझ लिया था जो वस्तुत उसके 'हुसेन खॉ' होने से ठीक नही कहा जा सकता। यह इस कारण भी, अमान्य ठहराया जा सकता है कि इस पठान सरदार को उस समय 'बडराजा' की कोई पदवी भी नही दी जा सकती थी। उत्तर कुतबन के समसामयिक दो अन्य ऐसे 'हुसेन शाह' भी वर्त्तमान थे जिनके विपय मे उक्त प्रकार की बातो का कहना उपयुक्त हो सकता था। इनमे से एक जौनपुर का शासक सुलतान हुसेन शाह शर्की था जिसे सिकन्दर लोदी ने सन् १४९४ ई० मे बनारस के निकट हराया था और जो वहॉ से भागकर बगाल के शासक की शरण मे गया तथा भागलपुर जिले के 'कहलगाँव' मे रहते समय, सन् १५०० ई० मे मर गया। उस बगाल जिले के शासक का भी नाम अलाउद्दीन हुसेन शाह (सन् १४९३-१५१९ ई०) था तथा वह वहुत उदार एवं कला-साहित्य का प्रेमी भी था। अतएव, यह प्रश्न उठ सकता है कि शेख़ कुतवन ने यहॉ पर अपने आश्रयदाता हुसेन शाह शर्की का नाम लिया है अथवा इसने उसको भी शरण देने वाले वगाली हुसेनशाह की ओर सकेत करते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रगसा कर दी है। स्पष्ट है कि 'मृगावती' के रचना-काल सन् १५०३ ई० तक हुसेन शाह शर्की का देहान्त हुए लगभग तीन-चार साल व्यतीत हो चुके थे। इसकी रचना केवल "दो मास एव दस दिन" मे ही पूरी हो जाने के कारण, उसके जीवन काल के अतर्गत इसका आरभ होना तक भी नही कहा जा सकता था। उसका नाम केवल उसी दशा मे लिया जा सकता था जव उसे, 'शाह हुसेन वड़राजा' रहा है और इसका 'छत्र सिघासन' भी कभी सुशोभित रह चुका है जैसे शब्दों के प्रयोग द्वारा न स्मरण किया जाय, जो यहाँ पर खीचातानी की स्थिति मे ही सभव होगा। परतु, यदि बगाल के हुसेन शाह का सम्वध उपर्युक्त प्रगसा के साथ जोडा जा सके तो केवल इतनी ही कठिनाई पड सकती है कि वह वगला भापा का उन्ना-यक शासक शेख़ कुतवन की अवधी कृति के लिए उत्साह प्रदान करने वाला नही ठहराया जा सकता है। प्रो० अस्करी ने इसीलिए उसे विदेशी (of alien origin) कहा है और अनुमान किया है कि उसे उत्तर प्रदेश एव अवधी से कुछ भी प्रयोजन न होगा, क्योकि वह अधिक से अधिक विहार तक ही अपना अधिकार जमा सका

था। इसके विपरीत हुसेन शाह शर्की तिरहुत एव उडीसा तक विजय प्राप्त कर चुका था, दिल्ली के सुलतानो से लडा था तथा कवि एव सगीतज्ञ भी रहा[1]। फिर भी, इसका मरण हो जाने के कारण, शेख़ कुतवन द्वारा इसके नाम का 'शाहे-वक्त' के रूप मे लेना तथा इसके विपय मे 'आहि वडराजा' अर्थात् 'वड़े राजा हैं' तक कहना अनुपयुक्त ही समझा जा सकता है, जहाँ इसके शरणदाता हुसेन के लिए वैसा कह डालना उतना अनुचित न जान पडा होगा।

शेख़ कुतवन के पीर शेख़ वुढन कौन थे, इस विषय मे भी मतभेद ही दीख पडता है। 'आईन-ए-अकवरी' मे किये गए उल्लेख से प्रकट होता है कि एक शेख़ वुढन शत्तारी शेख़ अव्दुल्ला शत्तारी के वशज थे और सुलतान सिकन्दर लोदी (सन् १४८९-१५१७ ई०) के समकालीन भी थे। वहाँ पर यह भी कहा गया मिलता है कि उस ग्रन्थ के रचयिता के पिता के वड़े भाई शेख़ रिजक उल्लाह शेख़ वुढन से मिले थे और उनसे उन्होंने 'जिक्र' की साधना की शिक्षा भी ग्रहण की थी[2]।" परतु इस शेख़ वुढन का नाम 'अख़वारुल असफिया' एव 'अख़वारुल अख़ियार' मे भी शेख़ 'वोधन' न कि 'वुढन' दिया गया जान पड़ता है। 'मृगावती' की ही एक पक्ति 'सुहर्वदि जिन्ह लग निरमरे' द्वारा यह भी सूचित होता है कि जिस अपने "पीर के चरणो मे शेख़ कुतवन वैठ चुके थे" उसका सम्वध सूफियो की सुहर्वर्दी शाखा से हो सकता है। अतएव, उनके शत्तारी होने का अनुमान हमे साधार नही प्रतीत होता और वह अधिक से अधिक सदिग्ध वना रह जाता है। चाहे शेख़ वुढन जिस किसी भी शाखा के रहे हो शेख़ कुतवन ने उनके प्रति अपार श्रद्धा प्रदर्शित की है और उन्हे अपना 'सवसे वडा पीर' भी कहा हे। प्रो० अस्करी द्वारा किये गए एक उल्लेख से पता चलता है कि शेख़ कुतवन की एक मजार भी वर्त्तमान है, किन्तु उसका और विवरण उपलव्ध नही है। शेख़ कुतवन के पीर वुढन का नाम लेते समय डॉ० सुकुमार सेन ने उसे 'वुरहान' भी कहा है जिससे जान पडता है कि वे इन दोनो शव्दो को एक दूसरे का पर्याय जैसा

1. Rare Fragments of Chandain etc. p. 23.

2. Dr. Mohan Singh : Kabir and the Bhakti Movement, Vol. I p. 93.

मानते है तथा इसी के आधार पर उन्होने शेख़ बुढन का चिश्तिया शाखा का भी होना बतलाया है[1]। आचार्य शुक्ल ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अतर्गत पहले ऐसा ही मत प्रकट किया था। परतु इन दोनो मे से किसी ने भी, अपनी इस धारणा की पुष्टि मे कोई प्रमाण प्रस्तुत नही किया था, न उक्त 'सुहर्वर्दी' के साथ कोई सामजस्य बिठा सके थे, क्योकि उनके वैसा लिखने के समय तक अभी कदाचित् इस शब्द वाली पक्ति का पता नही चल पाया था। डॉ० सेन द्वारा उद्धृत—

धरम जुदिष्ठिल उनको छाजा। हम सिर छाह जियो जगराजा।
दान देई औ गनत न पारे। बलि ओ करन न सरवर थारे॥[2]

पक्तियो मे आये हुए आशीर्वादात्मक 'जियो' तथा वर्त्तमान कालीन 'देइ' शब्दो के आधार पर यह अवश्य सूचित हो सकता है कि शेख़ कुतबन के इन्हे प्रयोग करते समय हुसेन शाह सभवत जीवित होगा और दान भी देता रहा होगा तथा इसके द्वारा उपर्युक्त अनुमान का समर्थन भी किया जा सकता है कि यह 'जीवित' सुलतान बगाल का ही रहा होगा। यह अवश्य है कि 'मृगावती' की सम्पूर्ण प्रति का प्रामाणिक पाठ मिल जाने पर ही इस विषय में, कोई अन्तिम बात कही भी जा सकती है। पता चला है कि श्री उदयशंकर शास्त्री ने 'मृगावती' की पूरी प्रति सम्पादित कर उसे प्रकाशनार्थ दे रखी है।

शेख़ कुतबन के इस प्रकार कहने से कि इस रचना के अतर्गत कही गई प्रेम-कहानी पहले से चली आती थी, यह पूर्णरूप से स्पष्ट नही हो पाता कि 'चदायन' की प्रेमकथा की भाँति वह किसी लोकगाथा वा लोकगीत के रूप मे वर्त्तमान थी अथवा इसके विषय मे किसी पुस्तक का निर्माण भी हो चुका था और यदि यह दूसरी बात रही तो वह रचना कौन-सी थी। उससे केवल इतना ही पता चल पाता है कि उसे इन्होने 'फिर से' अपने ढग से 'गेय रूप दे दिया'। इस कवि

१. डॉ० सुकुमार सेन : बाँगला साहित्येर इतिहास (प्रथम खण्ड) कलिकाता सन् १९५० ई०, पृ० ५६३।
२. वही पृष्ठ।

के द्वारा मूल आधार वनायी गई ऐसी कथा के सम्बंध मे अभी तक सभवतः किसी ने कोई निश्चित अनुमान भी नही किया है। इसके सिवाय अभी तक हमें इस वात का भी कोई पता नही चल सका है कि इसके कथानक को लेकर वा उसको अंगत. अपनाते हुए भी, किसी हिंदी कवि ने पीछे कोई रचना की हो। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण' (पहला भाग) से पता चलता है कि किसी मेघराज प्रधान नामक कवि ने 'मृगावती की कथा' नाम से कोई रचना स० १७२३ (सन् १६६६ ई०) मे लिखी थी जिसमे "कुँअर इन्द्रजीत और मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन" पाया जाता है और उसकी उपलब्ध प्रति का लिपिकाल स० १८०६ (सन् १७४९ ई०) है वही पर एक नीचे वाली टिप्पणी के आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि यह कवि सं० १७१७ (सन् १६६० ई०) के लगभग वर्त्तमान था, जाति का कायस्थ रहा तथा वह ओरछा नरेश राजा सुजान सिंह का 'आश्रित' भी था।[1] सभवतः इसी मेघराज प्रधान की 'मकरध्वज की कथा' नामक रचना का विवरण 'सभा' वाले 'चौदहवे वार्पिक विवरण' मे भी दिया गया दीख पड़ता है[2], किंतु इससे अधिक ज्ञात नही है इसके अतिरिक्त हमें इस प्रकार के जान पडने वाले ग्रंथो में से दो जैन कवियो की रचनाओं की भी सूचना मिलती है जिनमे से एक विनय समुद्र की कृति 'मृगावती' चौपाई स० १६०२ (सन् १५४५ ई०) है[3] और दूसरी समय सुन्दर द्वारा निर्मित 'मृगावती रास' स० १६६८ (सन् १६११ ई०) है[4] जिसका भी नाम अन्यत्र 'मृगावती चौपाई' ही दिया गया दीख पडता है[5]। इनमें

---

१. (वनारस, सं० १९८०), पृ० १२४

२. हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का चौदहवाँ वार्षिक विवरण (काशी, सं० २०११ वि०) पृष्ठ ४३९-४४०।

३. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी : राजस्थानी भाषा और साहित्य (कलकत्ता १९६० ई०) पृ० २५७।

४. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (वर्ष ५७, अंक १, सं० २००९) पृ० १७।

५. जैन गुर्जर कविओ (प्रथम भाग), (अहमदावाद, सन् १९२६ ई०) पृ० ३४३।

से प्रथम रचना का कोई सक्षिप्त परिचय भी हमे उपलब्ध नहीं है और जो दूसरी का विवरण मिलता है उसके आधार पर विदित होता है कि इसके अतर्गत 'उदयन कुमर मृगावती राणी' की कथा दी गई है तथा इसमे शील के प्रभाव को उदाहृत भी किया गया है। इसके तृतीय खण्ड के सम्वध मे किये गए सकेतो द्वारा यह भी जान पडता है कि इसके अन्तर्गत "श्री विरागमन, मृगावती दीक्षा, उदयन श्रावक व्रत ग्रहण, मृगावती चंदना केवलोत्पत्ति तन्निर्वाण वर्णन" जैसे विपयो का समावेश किया गया है[1] जिससे यह शेख कुतवन की रचना वाले विपय से सम्वद्ध न होगी।

परतु उस विपय को अथवा 'मृगावती' के कथानक को पूर्णत. अथवा अशत. लेकर तथा कभी-कभी उसे अपने ढग से और अधिक विस्तृत रूप भी देकर लिखने वालो मे, कई वगला कवियो के नाम लिये जा सकते है जिनमे से दो 'द्विज पशुपति' एव 'द्विज राम' नामो द्वारा अभिहित किये गए है जो इसी कारण, हिन्दू जान पडते है। इन दोनो मे से 'द्विज पशुपति' की रचना का नाम 'चन्द्रावली' है जिसे सभवत १७वी ईसवी शताव्दी के उत्तरार्द्ध काल मे लिखित कहा जा सकता है[2]। इसमे नायक का नाम, विश्वकेतु दिया गया मिलता है जो कनकानगर के राजा किसी अश्वकेतु तथा उसकी रानी सुलक्षणी का पुत्र है। इसी प्रकार इसकी नायिका का नाम 'चन्द्रावली' है जो रत्नपुर के राजा चन्द्रसेन की पाँच कन्याओ मे से सवसे छोटी है। चन्द्रावली इन्द्र की सभा मे नृत्य किया करती है और इसके प्रति उन्हे प्रेम भी हो जाता है, किंतु इसका यह प्रत्याख्यान कर देती है जिस पर क्रुद्ध होकर वे इसे बारह वर्षो तक हरिणी के रूप मे वर्त्तमान रहने तथा वन के काम सरोवर मे डुवकी लगाकर मुक्ति पाने के विपय मे शाप देते हैं। इस वारह वर्ष की अवधि के पूर्ण होते समय विश्वकेतु किसी दिन आखेट मे इस 'चन्द्रावली हरिणी' को देख लेता है जो वन मे प्रवेश कर जाती है तथा जिसे काम-सरोवर मे डुबकी लगाते ही अपना पूर्व रूप मिल जाता है। वह विश्वकेतु को

---

१. वही, पृ० ३४४-३४६।

२. डॉ० सुकुमार सेन : इसलामि बाँगला साहित्य, पृ० ३४।

अपना परिचय देकर अन्तर्हित हो जाती है। विश्वकेतु उसके लिए विरही वनकर वही ठहर जाता है और उसका पिता उसके लिए वहाँ एक प्रासाद वनवा कर उसकी परिचर्या के लिए किसी 'धात्री सुमति' को नियुक्त कर देता है जिसके परामर्श द्वारा इस राजपुत्र को कुछ धैर्य मिलता है। निर्दिष्ट दिन को पाँचो वहने, अप्सराओ के रूप मे काम सरोवर पर आती है और विश्वकेतु उनके वस्त्र छिपा देता है जिससे वे जल के वाहर नही आ पाती। इसी समय 'चन्द्रावली' किसी पद्मपत्र पर एक श्लोक लिखकर छोड देती है जिसे पकड़ने के प्रयास मे विश्वकेतु और उसके साथी झगड़ने लग जाते है और अप्सराएँ भाग निकलती हैं। राजपुत्र और भी दुखी हो जाता है, किंतु दूसरे ऐसे अवसर पर, वह 'चन्द्रावली' के वस्त्र छिपा देता है और यह उसके वश मे आ जाती है। तत्पश्चात् ये सभी राजधानी मे जाते हैं और राजा 'चन्द्रावली' के साथ विश्वकेतु का विवाह करने की तैयारी में लग जाता है, किंतु यह जिद करती है कि मै अपनी वहनो के आने पर ही विवाह करूँगी। इस पर इसे समति के पास रखकर पिता-पुत्र विवाह के व्यवस्था मे लगते हैं। तव तक यह अपने छिपाये गए वस्त्रो को पाकर फिर एक वार अन्तर्हित हो जाती है और जाते समय यह सुमति को कुछ सकेत भी दे जाती है जिसके आधार पर इससे विश्वकेतु की फिर रत्नपुर में भेट हो सकती है।

विश्वकेतु को जव उसके अन्तर्धान होने का पता चलता है तो वह कालिका देवी का पूजन करता है और योगी के वेश मे निकल पडता है। कुछ दूर जाने पर उसके कानो में 'वयालिस स्वरो का गीत' सुनायी पड़ता है जिसकी शिक्षा पाने के लिए वह वचपन से ही व्यग्र रहता था। वह उसी ओर जाता है जहाँ उसकी भेट किसी श्री वत्सर से होती हैं जिसकी सहायता करके यह उससे उन वयालिस रागो को खोज लेना चाहता है। फिर यह उससे सगीत विद्या प्राप्त कर तथा उसके द्वारा नियुक्त चतुर्ध्वज नामक सुन्दरी को छोड़कर रत्नपुर की ओर आगे वढता है। वह फिर नाना देशो से घूमता-फिरता समुद्र की धाराओ में पड जाता है और वहाँ पर किसी घडियाल का उद्धार कर फिर किसी राक्षस द्वारा ग्रस्त तरुणी को भी वचा लेता है जिसके फलस्वरूप वहाँ का राजा प्रसन्न होकर उस कन्या के साथ इसका विवाह भी कर देता है। इसके अनन्तर विश्व-

केतु के मार्ग मे घोर वन पड जाता है जिसके भीतर इसे कुछ नैराश्य प्रतीत होने लगता है, किंतु यह फिर किसी एक बुढिया की कुटिया मे जाकर विश्राम कर लेता है । पीछे उससे भी विदा ले किसी दूसरे वन मे पहुँच जाता है जिसमे यह स्वर्ण शय्या पर पडी हुई किसी चित्रमाला नामक तरुणी को देखता है । वह किसी राक्षस द्वारा अपहृत की गई रहती है जिसके साथ मल्लयुद्ध करके यह उसका वध कर देता है और चित्रमाला को उसके पिता के यहाँ पहुँचा देता है जिसका नाम उदय-चन्द्र है और जो प्रसन्न होकर इसे अपनी उस कन्या को अर्पित कर देता है । फिर विश्वकेतु विहडा नगर मे जाता है, जहाँ के लोग भेंडा पालते और मास खाया करते है तथा जहाँ के राजपुत्र को बन्दी बनाने वाले 'मसाम्वर' को मार कर यह किसी अन्य बुढिया और उसके अनुचरो के फेर मे पड जाता है, किंतु वहाँ से निकल कर वह काचननगर के राजा के यहाँ पहुँचता है और उसे 'वयालिस राग' सुनाता है । वही पर इसे किसी योगी गुरु रुद्रभारत से रत्नपुर के मार्ग का पता चल जाता है और यह उससे योगसाधना की भी शिक्षा ग्रहण करता है । फिर वह योगी इसके उरु का मास काट कर काली-पूजा करता है और इसे मत्र मे देता है । इसके अनन्तर विश्वकेतु फिर आगे बढता है, दो समुद्रो को पार कर तीसरे समुद्र मे जाता है और डोगी के उलट जाने पर तिमिंगल मछली से धक्का खाता है और नाव की किसी पटरी के सहारे पार उतर पाता है । वहाँ यह किसी तीसरी बुढिया का आश्रय ग्रहण करता है और एक अजगर का उद्धार करके उससे एक मणि प्राप्त करता है । उसे लेकर यह अत मे 'चन्द्रावली' के जलाशय तक पहुँच जाता है और इसकी राजपुत्र सुलभ आकृति से प्रभावित होकर उसकी दासियाँ उसे इसकी सूचना दे देती है । 'चन्द्रावली' वहाँ पर इसकी परीक्षा लेने का भी यत्न करती है, किंतु, फिर इसे भली भाँति पहचान कर इसे अपना लेती है । दोनो की विवाह-विधि भी सम्पन्न हो जाती है तथा उसे एव चित्रमाला को साथ लेकर विश्वकेतु अपने यहाँ वापस आ जाता है[१] । 'चन्द्रावली' की इस कथा

---

१. डॉ० सुकुमारसेन : इसलामि बाँगला साहित्य (वर्द्धमान साहित्य सभा, बंगाब्द १३५८), पृ० ३४-९ ।

की कुछ वाते 'कथा सरित्सागर' की 'मृगावती' वाली उस कथा के प्रसंगो से मिलती है जिसमे अलम्बुषा नामक अप्सरा का इन्द्र के शाप द्वारा मृत्युलोक में आकर अयोध्या के राजा कृतवर्मा की पुत्री मृगावती होना पड़ता है और उसे तिलोत्तमा के शाप से अपने प्रेमी सहस्रानीक से १४ वर्षो तक वियुक्त होना पड जाता है[1]। इस प्रकार शेख कुतवन की 'मृगावती' वाली कथा तथा 'द्विज पशुपति' की इस 'चन्द्रावली' वाली कहानी के वस्तुत एक होने मे कोई सन्देह नही रह जाता। हो सकता है कि दोनो का मूल कथानक किसी तीसरी कथा से लिया गया हो अथवा परवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती का अनुसरण किया हो।

'द्विजराम' कवि की रचना का नाम 'मृगावती चरित्र' है जिससे पता चलता है कि इसमें भी, सभवत. उसी प्रेमाख्यान का विषय होगा। परतु, इस सम्बंध में अधिक विवरण उपलब्ध न हो सकने के कारण, कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। 'द्विज पशुपति' की 'चन्द्रावली' के अतर्गत उसके कथानक के 'मृगावती' जैसा होने के अतिरिक्त, कुछ ऐसी वाते भी लक्षित होती है जिनके द्वारा उसका कम से कम सूफी प्रेमाख्यानो के आदर्श पर लिखा जाना अनुमान किया जा सकता है। परतु, इस दूसरी रचना के भी सम्वध मे इस प्रकार समझ लेने के लिए कोई साधन हमें नही मिलता। इसके विपरीत एक तीसरे बंगला प्रेमाख्यान 'मृगावती यामिनी भान' के विषय मे कहा जाता है कि उस पर "वगला इसलामी पद्धति की छाप पूर्ण मात्रा मे पायी जाती है[2]।" इस प्रेमकहानी का नायक यामिनी भान वनारस के राजा जगत् चन्द्र राय तथा उसकी रानी भवानी का पुत्र है और इसकी नायिका मृगावती परी काचीपुर के राजा रूपरग राय की पुत्री है और इसके सम्वध मे इतना और भी कहा गया मिलता है कि यह न केवल एक छोटी सी कथा है, अपितु यह किसी कुतवन की 'मृगावती' से भिन्न एवं परिवर्ती काल की हिंदी रचना के आधार पर निर्मित की गई जान पड़ती है। 'मृगावती यामिनी भान' के रचयिता का नाम मुहम्मद खातेर दिया गया है, किंतु

---

१. द्वितीय लम्बक, प्रथम तरंग।

२. डॉ० सुकुमार सेन : इसलामि बांगला साहित्य, पृ० ४०

इसके रचनाकाल का उल्लेख नही किया गया है। इसी प्रकार किसी करीमुल्ला कवि द्वारा रचित 'यामिनी भान' की भी चर्चा की गई है और वतलाया गया है कि यह छोटी-सी पुस्तक न होकर कदाचित् मुहम्मद खातेर की प्रेमकहानी से वड़ी है और यह सभवत १८वी शताव्दी में निर्मित की गई है। इसी प्रकार 'मृगावती चरित्र' की भापा के विपय मे कहा गया है कि वह "कामरूपी उपभापा है"जिसे 'पुरानी असमी' भी कह सकते है[1]।

शेख कुतवन की 'मृगावती' की रचना, ठीक-ठीक उसके पूर्ववर्ती प्रेमाख्यान 'चदायन' के ही आदर्श पर की गई थी, ऐसा नही कहा जा सकता। 'चदायन' का नायक लोरक पहले से विवाहित रहा करता है अथवा कम से कम, उसकी सगाई तक मजरी से हो गई रहती है जो वात हमे 'मृगावति' के नायक राजकुँवर के यहाँ भी नही दीख पडती और यह सभवत. आरभ से ही प्रेमी-जैसा जीवन व्यतीत करने योग्य निर्मित रहता है। इसी प्रकार 'चदायन' की कथा मे जहाँ नायिका को भगा ले जाने, उसे लाते समय मार्ग मे अनेक प्रतिद्वन्द्वियो के साथ युद्ध करने तथा इस प्रकार, उसके प्रति विभिन्न व्यक्तियो की कामासक्ति प्रदर्शित करने की भी प्रवृत्ति दीख पडती है, वहाँ ऐसा कोई अवसर 'मृगावति' के अतर्गत नही उपस्थित किया जाता। इसके नायक को अपनी प्रेमपात्री को प्राप्त करने के लिए जो यत्न करने पडते है अथवा जो वाधाएँ झेलनी पडती है उनके प्रसग इससे मिलने के पूर्व ही आ जाते है। 'चदायन' का नायक एक ऐसे वीर पुरुप के रूप मे चित्रित किया गया है जो भलीभाँति शिक्षित एव सस्कृत नही जान पड़ता, न जिसे अपनी वुद्धि के वल पर कोई कार्य करने आता है अथवा जो छलछिद्र के साथ किसी के प्रति कोई व्यवहार ही कर सकता है। वह अपनी लडाइयो मे जीतता है, हारता है और ठगा तक जाता है, किंतु सदा भाग्यचक्र द्वारा ही प्रेरित होता जान पड़ता है। जहा 'मृगावति' का राजकुँवर अपने निश्चित उद्देश्य को लेकर प्रेममार्ग मे अग्रसर होता है, एकान्तनिष्ठ होने के कारण, विभिन्न कठिनाइयो को झेलता हुआ तथा दूसरो के सपर्क मे आकर उनसे कुछ न कुछ लाभ भी उठाता

१. वही।

हुआ चलता है और अत मे 'मृगावती' से मिल कर ही दम लेता है। अतएव, इन जैसी कतिपय अन्य वातो के भी आधार पर हम कह सकते है कि 'चदायन' की प्रेमकहानी का कथानक जितना दो व्यक्तियो के पारस्परिक प्रेम तथा उनके जीवन मे पडने वाले विघ्नो के चित्रण की ही सामग्री प्रस्तुत करता है, वहाँ 'मृगा-वति' की कथावस्तु अन्य ऐसी अनेक वातो के भी वर्णन का अवसर उपस्थित कर देती है जिनके सहारे हमे प्रेमतत्व और प्रेमसाधना का रहस्य समझ पाने में भी सहायता मिल सके। इसी कारण, इस दूसरे प्रेमाख्यान को हम सूफीमत की व्याख्या के सम्वध मे अधिक उपयुक्त भी ठहरा सकते है। 'चदायन' की रचयिता का कार्य इस दृष्टि से उतना सरल नही था जिस कारण पीछे के हिंदी सूफी प्रेमा-ख्यानो मे उसका ठीक-ठीक अनुसरण नही किया गया।

फिर भी, इन दोनो प्रारम्भिक रचनाओ के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि शेख़ क़ुतवन 'चदायन' द्वारा अवश्य प्रभावित रहे होगे[1]। इसे उन्होने पढा-सुना होगा तथा इसमे लक्षित होने वाले महत्वपूर्ण सकेतो से उन्होने कुछ न कुछ लाभ भी उठाया होगा। परतु ऐसा लगता है कि हिंदी के सूफी प्रेमाख्यान-रचयिताओ के लिए आदर्श उपस्थित करने मे जितना 'मृगावति' सफल हो सकी, उतना 'चदा-यन' नही हुई और जहाँ इस दूसरी रचना का साधारण उल्लेख तक किया जाना कठिन हो गया, वहाँ पहली की कथा की ओर प्राय सकेत किये जाते आए। 'मृगा-वती' की किसी उपलव्घ प्रति मे अथवा पिछली ऐसी रचनाओ मे जहाँ 'चदायन' वा उसकी प्रेमकहानी का कही साधारण उल्लेख भी नही पाया जाता, वहाँ राज-कुँवर के मिरिगावति के लिए जोगी वनकर कचनपुर जाने[1] का प्रसग जायसी की 'पद्मावत'[2] मे लाया गया दीख पड़ता है। उसमान की 'चित्रावली' के अतर्गत 'मृगावती' के रूप के प्रभाव मे पडकर राजकुँवर के प्रेम का शिकार वन जाने[3] की स्पष्ट चर्चा की गई मिलती है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि इसे

1. The Journal of the Bihar Research Society (December, 1955) p 484.

२. राजकुंवर कंचनपुर गयऊ। मिरिगावति कहं जोगी भयऊ—पदमावत (२३३)।

३. मृगावली मुखरूप वसेरा। राजकुंवर भयो प्रेम अहेरा।—चित्रावली (दो०३०)

ऐसे लोग अवश्य महत्व देते रहे होगे। जैन महाकवि वनारसीदास के आत्मचरित 'अर्द्धकथानक' (सन् १६४१ ई०) से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी कथा उस समय दिन तथा रात में भी पढी जाया करती थी'[1] । जायसी अथवा उसमान ने जहाँ 'चदायन' अथवा उसकी कथा का अपने यहाँ प्रेम के प्रभाव को उदाहृत करने के प्रसग मे स्मरण करना भी आवश्यक नही समझा, वहाॅ दूसरी ओर 'पद्मावत' एव मझन की 'मधुमालती' पर हमे 'मृगावती' की रचना-शैली, क्रम-योजना एव भावाभिव्यक्ति और शव्द-प्रयोगो तक का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है[2] और हमे ऐसा लगता है कि यह रचना वहुत लोकप्रिय रही होगी । पर अभी तक अपनी पूर्णप्रति के रूप मे सपादित होकर वह हमारे सामने नही आ सकी है, किंतु जहाॅ तक पता चलता है, इसकी कई अधूरी तथा एकाध पूरी प्रतियाँ भी उपलव्ध हो चुकी हैं और सभव है कि, इसका कोई प्रामाणिक सस्करण भी प्रकाशित हो जाय। इसकी प्रथम चर्चा कदाचित् सन् १९०० ई० की खोज रिपोर्ट मे की गई थी और फिर 'सभा' को यह चौखभा के 'भारतेन्दु पुस्तकालय' मे कैथीलिपि मे उपलव्ध हुई थी जो आकार-प्रकार की दृष्टि से अधूरी ही कही जा सकती थी। परतु इस समय इसकी किसी प्राय पूर्ण प्रति का किसी श्री देसाई के यहाँ से प्रो० अस्करी के यहाँ आ जाना कहा जाता है और डाॅ० जयगोपाल मिश्र का भी कहना है कि उनके पास इसकी एक प्रामाणिक प्रति सुरक्षित है।

(७)

'मृगावती' के अनन्तर लिखी गई हिंदी की सूफी प्रेमगाथाओं मे से जो अव तक उपलव्ध हो सकी है, सर्वप्रथम का नाम 'पद्मावत' आता है जो मलिक मुहम्मद जायसी की रचना है और जिसका रचनाकाल सन् १५४० ई० समझा जाता है। जायसी ने अपनी प्रेमकहानी का कथानक राजस्थान के इतिहास से लिया है और

---

१. हिन्दुस्तानी (प्रयाग, अप्रैल, १९३८ ई०) पृ० २१२ ।

2. Prof. Askari's above article in the Bihar Research Society Journal p 459

उसे अपने ढग से काम मे लाया है। चित्तौर के राजा रत्नसेन की विवाहिता स्त्री नागमती उसके यहाँ पहले से ही रहा करती है, किंतु वह एक सुए से सिंहलगढ़ की पद्मावती के सौन्दर्य की प्रगसा सुनकर उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है तथा उसकी प्राप्ति के लिए जोगी का वेश धारण करके निकल पड़ता है। उसे मार्ग मे अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़ जाते है, किंतु वह इन वातों की परवाह नही करता। अत में, वह सिंहल पहुँच जाता है तथा पद्मावती का साक्षात् दर्शन करके और भी वेचैन होकर उसे कई परीक्षाओ के अनन्तर प्राप्त करता है और घर वापस आता है। परतु यहाँ उसे फिर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन से पद्मावती के ही कारण शत्रुता मोल लेनी पड़ जाती है। वह इसे किसी प्रकार उसे न समर्पित करने पर भी, इसके साथ सुखमय जीवन व्यतीत नही कर पाता और इस कथा का अत दु खमय वन जाता है। राजा रतनसेन किसी युद्ध में मारा जाता है, उसकी रानियाँ उसके साथ सती हो जाती है और इस प्रकार पद्मावती सुलतान के भी हाथ नही लगती। 'पद्मावत' के कथानक मे इस प्रकार, दो घटना-चक्रो का समावेश किया गया है जिनमे से एक राजा रतनसेन द्वारा पद्मावती के लिए जोगी वनकर यात्रा करने से आरभ होकर उसे लेकर चित्तौर लौटने तथा उसके साथ भोगविलास करने लगने तक समाप्त हो जाता है, जहाँ दूसरे का आरंभ सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा उस रूपवती के लिए युद्ध छेड़ने से होता है। अत तक उसे न पा सकने एव उसके अपने पति के साथ जलकर भस्म हो जाने तक की घटनाओ के साथ सुलतान के पश्चात्ताप से समाप्त होता है। इन दोनों मे से पहले के प्रसंग मे दिये गए विवरणो के साथ जहाँ 'मृगावती' की प्रेमकहानी का साम्य लक्षित होता है, वहाँ दूसरे मे वर्णित घटनाओं को वस्तुतः 'चदायन' को प्रमुख संघर्ष प्रवान प्रसगो वाली कोटि मे रखा जा सकता है। राजा रतन-सेन भी 'मृगावती' के राजकुमार की ही भाँति जोगी का वेश धारण करके अपनी प्रेमपात्री के लिए घर छोड़ता है और लगभग उसी की भाँति अपने मार्ग मे विविध कष्टो को झेलता हुआ भी दीख पडता है तथा इसे भी वहुत कुछ उसी प्रकार परी-क्षाएँ देनी पड़ जाती है, जिस प्रकार 'मृगावती' का नायक देता है। इसी प्रकार जायसी ने अपनी 'पद्मावत' के दूसरे खण्ड मे उन विघ्न-वाधाओं की भी चर्चा

छेड़ दी है जो लोरक के सामने 'चदायन' मे जैसे, अपनी प्रेमपात्री के साथ लौटते समय न आकर रतनसेन के सिंहल से घर पहुँच कर सुखपूर्वक रहते समय आ जाती है और उनके कारण इसे वस्तुत प्रतिहत भी हो जाना पडता है। यहाँ पर उल्लेखनीय यह जान पडता है कि 'पद्मावत' के रचयिता ने जितना महत्व इसके पूर्वांश की घटनाओ को दिया है उतना उत्तराश को नही प्रदान किया है, प्रत्युत उसने कदाचित् इसे केवल भौतिक प्रेम एव जीवन की क्षणभगुरता को उदाहृत करने के लिए ही उसके साथ जोड दिया है।

जहाँ तक राजा रतनसेन की विवाहिता पत्नी नागमती के उस कथा मे समाविष्ट होने की बात है इसे हम 'मृगावती' के अनुसरण मे किया गया नही ठहरा सकते, प्रत्युत इसको 'चदायन' वाली मैना वा मजरी की जगह लायी गई कह सकते है। इसलिए, इसके कारण 'पद्मावत' के अतर्गत हमे, एक हिन्दू नारी के उस पातिव्रत की भी एक झाँकी मिल जाती है जिसे 'चदायन' के दूसरे अश को विस्तृत रूप देने वाले कुछ कवियो ने बडे सुन्दर ढग से उदाहृत किया है। वास्तव मे नागमती वाले प्रसग को 'पद्मावत' मे समाविप्ट करके जायसी ने इसमे भारतीय प्रेमाख्यानो के सवसे महत्वपूर्ण अग 'सत निर्वाह' की भी प्रतिप्ठा कर दी है। यद्यपि इसमे यहाँ पर इसके उस रूप का भी प्रदर्शन नही हो पाया है जो 'सत' की परीक्षा द्वारा ही सभव हो सकता है तथा जिसे अन्यत्र देवपाल एव अलाउद्दीन की दूतियो के प्रसगो द्वारा पद्मिनी के सम्वन्ध मे दरसाया गया है। फिर भी, यहाँ पर उत्कृप्ट पतिप्रेम का आदर्श तो उपस्थित ही कर दिया गया है। इस प्रकार, वह रचना अधिक पूर्ण कहलाने मे समर्थ भी कही जा सकती है। भारतीय प्रेमाख्यानो की यह विशेपता रही है कि या तो उनमे किसी विवाहिता नारी की आदर्श पतिभक्ति के उदाहरण उपस्थित किये जाते रहे अथवा यदि उनकी कोई नायिका विवाहिता नही रहा करती, वहाँ पर वर्ण्य प्रेम-भाव को प्राय. वैसा रूप दे दिया जाता रहा जिसमे कामासक्ति भी प्रचुर मात्रा मे विद्यमान रहे। ऐसे उदाहरणो का अन्तर अधिकतर या तो गाधर्व विवाह मे कर दिया जाता था अथवा उन्हे वैध परिणय के प्रसगो तक भी पहुँचा दिया जाता था। किंतु, वैसी रचनाओ के वहुधा निरुद्देश्य लिखे जाने के कारण, वहाँ उन परिस्थितियो का भी समावेश कर देना

अनिवार्य नही समझा जाता था जिनका निर्माण नायक एव नायिका के प्रेमभाव वाले प्रारभिक विकास की ही दशा मे कर दिया जाता है तथा जिनका वाहुल्य हमे विशेपकर सूफ़ियो द्वारा रचे गए प्रेमाख्यानो मे ही लक्षित होता है। इसके सिवाय हमें इस प्रसग मे, यह वात भी उल्लेखनीय जान पडती है कि जो-जो कठिनाइयॉ अथवा भीपण वाधाएँ, सूफी प्रेमाख्यानो के अतर्गत उनके नायको के प्रेम-मार्ग पर अग्रसर होते समय उपस्थित की जाती है, प्राय उन सभी का समावेश भारतीय प्रेमाख्यानो के उस अश मे कर दिया जाता है जिसमे उनकी पतिपरायणा नारियो की दशा का वर्णन पाया जाता है। छल-वल द्वारा परित्यक्त हुई विरहिणी दमयन्ती के मार्ग मे ऐसे अनेक विघ्न उपस्थित कर दिये जाते है जो हमे सूफी प्रेमाख्यानो के अंतर्गत उनके नायको के मार्ग मे रखे गए से दीख पडते है और जिनकी भीपणता उसके नारी होने के कारण कही और भी वढ गई जान पडती है। सूफी परक प्रेमाख्यानो मे जहाँ ऐसी कठिनाइयाँ प्रेमी नायको के एकान्तिक प्रेम की शक्ति को उदाहृत करती है, वहाँ परपरागत भारतीय प्रेमाख्यानो के अतर्गत वे ही पतिपरायणा नारियो के पातिव्रत परक वल का आदर्श उपस्थित करती जान पड़ती है।

जायसी ने अपनी 'पद्मावत' की नायिका पद्मावती के सामने उक्त परिस्थितियो को उतना नही आने दिया है, प्रत्युत इन्हे उसके नायक रतनसेन तक ही सीमित रखा है और इस प्रकार उस रचना को विशुद्ध सूफी प्रेमगाथा का ही रूप दे डालना चाहा है। परतु, इसमे नागमती परक विरह वर्णनो का भी समावेश हो जाने के कारण, हमें उक्त भारतीय रग की भी एक झलक मिल जाती है। जायसी ने इस अश मे जिस वारहमासा का प्रसग उपस्थित किया है वह भी भारतीय पर-परा के ही अनुकूल है। यद्यपि हमे इसके उदाहरण कुतवन की 'मृगावती' जैसे प्रेमाख्यानो मे भी उपलव्ध होते है। इसका सूफी प्रेमाख्यानो के साथ परपरागत सम्वन्ध नही जोड़ा जा सकता, न कदाचित् इसे हम फारसी की पुरानी प्रेमगाथा तक निर्दिष्ट ही कर सकते है। जहॉ तक पता चलता है, इस प्रकार के प्रसगो का मूलस्रोत उन सन्देश परक रचनाओ मे ही ढूंढा जा सकता है जिनके अनेक उदाहरण यहाँ के समृद्ध सस्कृत साहित्य मे उपलव्ध है और जो यहाँ पर पहले

साधारणत. ऋतुओ के वर्णन अथवा कतिपय मासो की विशेषताओ के चित्रण से ही सम्बद्ध थे तथा जिनकी सूचना द्वारा वियुक्त व्यक्ति की मनोभावना का भी परिचय दे दिया जाता था। महाकवि कालिदास के विरही यक्ष से लेकर अपभ्रंश रचना 'सन्देशरासक' की विरहिणी 'वरस्मणि' द्वारा प्रेषित विरह सन्देशो तक के वर्णनो मे हम ऋतुजन्य प्रभावो की ही ओर निर्देश किया गया तथा उन्हे क्रमशः अधिक व्यापक रूप दिया जाता हुआ पाते है। कतिपय जैन कवियो के 'रास-ग्रन्थो' अथवा 'वीसलदेव रास' जैसी रचनाओं तक यह विशेषता साहित्य के एक निश्चित 'प्रकार' को जन्म दे देती है। ऋतु विशेष का वर्णन अथवा उसके उद्दीपक अगो का विशद् चित्रण क्रमश षड्ऋतु वर्णनो मे परिणत होता हुआ अत मे, वर्ष के वारहो मासो के विस्तृत परिचय तक पहुँच जाता है। उसके व्याज मे हमे तद-नुसार परिवर्तित होती जाने वाली विरहदशा के विभिन्न रूपो को भी प्रत्यक्ष कर लेने का पूरा साधन मिल जाया करता है। सूफी प्रेमाख्यानो के रचयिताओ ने इस का समावेश प्रायः वैसी स्थितियो मे ही किया है, जहाँ पर दो प्रेमियो का सम्बध अभी किसी वैवाहिक बंधनो द्वारा पुष्ट किया गया नही रहता।

वाह्य प्रकृतिगत परिवर्तनो के प्रभाव मे मानव हृदय की अत.प्रकृति के भी आ जाने के विषय मे कभी किसी को सन्देह नही हो सकता। हम प्रायः नित्य देखा करते हैं कि जब कभी हमारे ऋतुकालीन वातावरण मे किसी प्रकार की विशेषता आ जाती है तो हमारा हृदय आप से आप उल्लासमय हो उठता है। इसी प्रकार जब कभी उसमे हमें किसी मन्दता का अनुभव होने लगता है तव हम स्वभावतः खिन्न से दीख पडने लग जाते है। कभी-कभी तो यहाँ तक भी प्रतीत होता है कि हमारा जीवन ही वैराग्यपूर्ण वन गया है। इतना ही नही, प्रत्युत यदि कभी हमारी मनोवृत्ति किसी दुरवस्था का शिकार वनी रहा करती है उस दशा में वैसे प्राकृतिक परिवर्तन, मनोमोहक वने रहते हुए भी हमें अपनी विवशता के कारण, नितान्त विपरीत रूप मे प्रभावित करते जान पडते है और हम उनके द्वारा आनन्द का अनुभव करने की जगह कटु विषाद के ही भागी वन जाते हैं। 'मेघदूत' का विरही यक्ष आषाढ के आह्लादकारी नवीन मेघो की ओर दृष्टिपात करता है, किंतु उसे अपने प्रवास की दशा में आन्तरिक दुःख का ही अनुभव होने

लगता है। ऋतु-परिवर्तन की विविध भूमिकाएँ इसी प्रकार, हमारे साहित्य के ऐसे अन्य अनेक प्रेमी नायकों एव नायिकाओ की भी मनोवृत्तियो पर अपने-अपने ढग से ही प्रभाव डालना चाहती हैं, किंतु उनकी पूर्वदशा के अनुसार ही वे उन्हे प्रभावित कर पाती है। वसंत की मनोमोहकता, उन्हे अपनी सयोगावस्था का स्मरण दिलाकर उनमे एक विचित्र विवगता की टीस उत्पन्न कर देती हैं। वर्षा वाले वादलो की सुखद रिमझिम एव शारदी ज्योत्स्ना की आकर्षक प्रभा तक उनके लिए वरावर विषम स्थिति के ही उपस्थित करने का कारण वन जाती है। भारत कृषि प्रधान देश है और इसके निवासियों के अधिकतर प्रकृति के सपर्क मे आते रहने के कारण, उनके सामाजिक व्रतों, त्योहारो तथा उत्सवो तक की योजना में ऋतु-परिवर्तन तथा अन्य वातावरण का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसके प्राचीन सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श से लेकर विविध आधुनिक प्रादेशिक भाषाओ तक के साहित्यो मे उनके वर्णन यथास्थल किये गए दीख पड़ते है। परतु, इनके साथ ही जो ऐसे विवरण हमे, उनके प्रेमाख्यानो वाले नायको अथवा नायिकाओ की मनोदशा का चित्रण करने के उद्देश्य से दिये गए उपलव्ध होते हैं, वे इसकी विशेषताओं के कारण, कही अधिक मार्मिक और सजीव वन जाया करते है।

'पद्मावत' वाले 'वारामासा' का आरभ आषाढ से होता है और वह जेठ तक चल कर एक वर्ष पूरा कर लेता है, जहाँ 'मृगावती' मे इसे सावन से आरभ किया गया रहता है और इसे स्वभावत. आषाढ़ तक पूरा किया जाता है। शेख़ कुतवन के इस रचनादर्श को जायसी के अनन्तर आने वाले तथा 'मधुमालती' की रचना करने वाले शेख मझन ने भी अपनाया है। परंतु उसमान की 'चित्रावली' मे उसका "जैसे वारह मास, छह ऋतु वीते मोहि[1]" कहलाकर वसंत ऋतु से आरंभ किया जाता है तथा शिशिर ऋतु के वर्णन से उसका अत कर दिया जाता है जिस कारण, इसे ठीक ठीक 'वारामासा' भी नही कहा जा सकता। 'हस जवाहिर' के रचयिता कासिम शाह ने फिर अपने वारामासा का आरंभ जायसी की भाँति आषाढ से ही किया है और उसका अंत भी जेठ तक कर दिया है जिससे

---

१. चित्रावली (ना० प्र० सभा संस्करण) पृ० ९४।

पता चलता है कि हिंदी के सभी सूफी प्रेमगाथा कवियो ने इस सम्बंध मे, किसी एक ही आदर्श का पालन नही किया है। जहाँ तक षड् ऋतुओ के वर्णन की बात है इसका आरभ कम से कम कालिदास के 'ऋतु सहार' की रचना के समय तक तो हो ही गया था। परतु बारामासे के रूप मे वर्णन प्रस्तुत करने वाली रचना-शैली का आरभ कब हुआ इसका ठीक पता नही चलता। हाफ़िज महमूद खॉ शीरानी का अनुमान है कि इसे सर्वप्रथम, ख्वाजा मासूद साद सलमन म० हि० सन् ५१५ (सन् ११२०) १ ई० ने आरभ किया होगा[1] जिसका जन्म लाहोर मे हुआ था और जिसके फारसी कवि होने के अतिरिक्त प्रथम मुस्लिम हिंदी कवि होने का भी उल्लेख किया जाता है। उसकी रचना 'द्वाजदह माहा' हमे उपलब्ध नही जिस कारण कहा नही जा सकता कि उसमे पहले किस मास का वर्णन किया गया है। नरपतिनाल्ह की रचना 'बीसलदेव रास' मे तो स्पष्ट सूचित हो जाता है कि उसके नायक के कार्तिक मास में प्रवासित होने के कारण उसका 'बारामासा' भी कार्तिक से ही आरभ किया गया है और उसे वहाँ आश्विन तक पहुँचा दिया गया है। हिंदी के सूफी कवियो के प्रबन्ध काव्यों मे भी कदाचित्, इस बात की ओर ध्यान दिया गया होगा। इसी प्रकार विभिन्न ऋतुओ के अनुसार निर्मित रचनाओं के सम्बंध में भी कहा जा सकता है, यद्यपि इस विषय मे कुछ भी निश्चित रूप से अभी नही निर्धारित किया जा सकता है।

'इन्द्रावति' नामक हिंदी सूफी प्रेमाख्यान के रचयिता नूर मुहम्मद ने भी अपनी उस रचना के अंतर्गत विवाहित होकर अपने पिता भूपति की राजगद्दी पर बैठने वाले राजकुँवर को ही प्रेमी नायक के रूप मे अवतरित किया है। राजकुँवर यद्यपि रतनसेन की भाँति किसी सुए से रूप सौन्दर्य का वर्णन सुन कर प्रेमासक्त नही होता, प्रत्युत इसके लिए उसके साधनो मे स्वप्न-दर्शन, एव चित्र-दर्शन की चर्चा की जाती है और यह 'तपी गुरुनाथ' को अगुआ बनाकर चलता तथा विविध कष्टो को झेलता हुआ आगे बढ़ता है। इस जोगी को स्वप्न मे ही देखकर सुन्दरी इन्द्रावती अपने यहाँ उसकी ओर आकृष्ट होती हुई भी दिखलायी जाती है। फिर

---

१. पंजाब में उर्दू (लहोर) पृ० ६१-२।

भी जहाँ तक उसके एकान्तनिष्ठ बनकर सोत्साह यत्न करने तथा परीक्षाओ मे खरा उतरने का प्रश्न है, यहाँ पर भी उसे रतनसेन की ही भाँति व्यवहार करना पड़ता है और तब कहीं वह अपनी प्रेमपात्री को प्राप्त कर पाता है। नूर मुहम्मद की यह रचना भी अपने पूर्वांश मे यही तक समाप्त हो जाती है, जिस प्रकार जायसी की 'पद्मावत' मे दीख पड़ता है। यह कवि अपने 'दीन' का प्रचार करने के लिए बहुत उद्योगशील जान पड़ता है। इस बात को उसने अपनी दूसरी रचना 'अनुराग बाँसुरी' के एकाधिक उल्लेखो द्वारा भी सिद्ध करा दिया है। किंतु 'इन्द्रावत' के दूसरे खड की भी आवश्यकता का अनुभव करने के कारण वह सभवत जायसी की उपर्युक्त रचना-शैली का अनुसरण करता हुआ भी दीख पड़ता है। फिर भी जायसी ने जहाँ अपनी एक अन्य रचना 'चित्ररेखा' के भी द्वारा हिन्दुओ के समाज मे समादृत पातिव्रत धर्म एव 'सत' पालन को महत्व देने की चेष्टा की है, वहाँ पर नूर मुहम्मद ने अपनी 'अनुराग बाँसुरी' द्वारा भी उस प्रेमसाधना के स्पष्टीकरण की ही चेष्टा की है जो मुस्लिम सूफ़ियो को अपने चरमलक्ष्य की सिद्धि के लिए अनिवार्य प्रतीत होती है और जिसको उसने यहाँ पर विभिन्न पात्रो के विशिष्ट नाम देकर भी समझाया है। पता नही, इसने अपनी रचना 'नलदमन' में क्या किया होगा[1]।

इन सूफी प्रेमगाथाओ के नायक, इस प्रकार अधिकतर अविवाहित ही रहने के कारण, राजकुमार अथवा शाहजादे ही रहा करते है और यदि कभी वे किसी राजवश के नही होते तो भी प्राय- यही देखा जाता है कि वे अपने माता-पिता की प्रिय सतान हैं। इन कथानायको के सम्बध मे बहुधा यह भी दीख पड़ता है कि इनके माता-पिता पहले सतान-रहित रहा करते हैं तथा उनकी ओर से इसके लिए अनेक यत्न किये जाते है और आशीर्वाद एव वरदान तक प्राप्त किये जाते हैं। इस प्रकार की चेष्टा कभी-कभी इन प्रेमकहानियो की नायिकाओ के लिए भी की गई पायी जाती है और ये भी अपने माता-पिता की लाडिली ही हुआ

---

१. आगे हिंदि – समुद्र तिराना। भाखा इन्द्रावति जो जाना।
फेर कहा नलदमन कहानी। कौन गनावै दूसरि बानी॥
—अनुराग बाँसुरी (बरवै २)।

करती है। 'चदायन' के नायक लोरिक के विपय मे पूरा विवरण उपलव्ध न
होता, किंतु 'मृगावती' का नायक 'राजकुँवर' चन्द्रगिरि के राजा गनपति देव
पुत्र है जो अपने पिता के वहुत कुछ दान पुण्यादि करने पर भी उसके घर ज
लेता है, जिस कारण, उसके लिए अत्यन्त प्रिय भी वन जाता है। लगभग इ
प्रकार की वाते हमे 'मवुमालति' के नायक राजकुमार मनोहर के सम्वध मे
दीख पडती है और उसका पिता राजा सूरजभान इसके जन्म के लिए किसी 'त
को प्रसन्न करके उससे लगभग उसी प्रकार 'पिंड' ग्रहण करता तथा उसे अप
रानी को देता है जिस प्रकार अयोध्या के राजा दशरथ ने अग्निदेव से 'ह
प्राप्त करके उसे अपनी तीनो रानियो को दिया था और तदनुसार गर्भवती हो
उन्होंने उनके चार राजकुमारो को जन्म दिया था । 'चित्रावली' का नाय
'सुजान' का भी जन्म अपने राजा धरनीधर के यहाँ शिव-पार्वती के प्रसाद से
होता है तथा कनकावति के नायक 'परमरूप', 'रतनावति' के मोहन, 'ज्ञान दी
के ज्ञान दीप, 'हस जवाहर' के हस और 'नूरजहाँ' के 'खुरशीद' विषय मे भी
तो इनको अपने माता-पिता के यहाँ किसी अनुष्ठान विशेष द्वारा जन्म लेते देख
हैं अथवा हजरत ख्वाजा ख़िज्र या पीर दस्तगीर जैसे महापुरुपो की कृपा द्वा
अवतार ग्रहण करते हुए पाते है। शेख़ रहीम कवि की प्रेमगाथा 'भापा प्रेमर
के अतर्गत हम उसकी नायिका चन्द्रकला को भी उसकी नि सतान माता रूपम
के गर्भ से लक्ष्मी देवी की कृपा से ही जन्म लेते देखते हे और वह अपने मात
पिता के लिए परम प्रिय वन जाती है। इस प्रकार के नायक एवं नायिका, अप
वाल्यकाल से ही विभिन्न कलाओ मे प्रवीण होते दीख पड़ते है। इनके रूप-गु
की प्रशसा भी प्राय· इस प्रकार की गई पायी जाती है जिसमे हमें अतिशयता ह
लक्षित होती हैं। ऐसे राजकुमार वा शाहज़ादे इस प्रकार भावुक एव कोमल हृद
के रहा करते है कि इन्हे केवल किसी स्वप्न वा चित्र में ही नही, अपितु किस
के द्वारा सौन्दर्य-वर्णन मात्र सुनकर भी, किसी सुन्दरी के प्रति सहसा आकृष्ट ह
जाना पडता है। ये प्राय प्रेम-विह्वल तक वन जाते है और अपने शारीरिक योग
क्षेम की कुछ भी चिन्ता न करके हुए विकट यात्राओ तक मे निकल पडते है
कभी-कभी उन्हे आखेटप्रिय के रूप मे भी दिखलाया जाता है तथा उसके ही व्याज

से ये किसी रूपवती का साक्षात् दर्शन कर उसके प्रति मुग्ध हो जाया करते है। अधिकांश प्रेमकहानियो के लिए उपर्युक्त वाते कथा-रूढ़ियो जैसी वनी हुई पायी जाती हैं।

ऐसा क्यों किया जाता है इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नही दीख पडता। परतु अनुमान किया जा सकता है कि उक्त सारी वाते, इन प्रेमगाथाओ के रचयिताओ द्वारा किसी न किसी उद्देश्य विशेष के ही कारण, समाविष्ट की गई हो सकती है। नायको वा नायिकाओं के माता-पिता के प्राय निःसतान होने पर उनके यहाँ इनका अनेक यत्नो के ही फलस्वरूप जन्म लेना तथा इनका सर्वगुण सम्पन्न भी हो जाना इनके प्रति हमारा स्वाभाविक आकर्षण जागृत करने के लिए हो सकता है। इनके ऐसे गुणो के ही कारण हम इनके प्रति कथारभ से ही अपनी सहानुभूति सी प्रकट करते लग जाते है। पीछे जव हम इन्हे किसी प्रकार के फेर में पडकर कष्ट झेलने की दशा में पाते है तो हम इनके लिए मोह मे पड़कर प्रायः चिन्तित भी वन जाते हैं। जव कभी इन्हे किसी राक्षस का सामना करना पडता है वा इन्हे कोई अजगर वा मगरमच्छ निगल जाता है अथवा जव कभी ये किसी विस्तृत समुद्र की तरगो पर वा वीहड़ वनो के वीच सकटापन्न हो जाते है तो हम इनकी रक्षा के लिए परम उत्सुक हो उठते है। ऐसा चाहते है कि ये जिस प्रकार भी हो सके, ऐसी वाधाओ से मुक्ति पाकर फिर हमारे सामने उपस्थित हो जायँ। इस प्रकार हम इनके प्रति एक विचित्र प्रकार की आत्मीयता के भाव का अनभव करते हुए इनके साथ-साथ हो लिया करते हैं। इनके पीछे-पीछे, एक मूक द्रष्टा की भाँति चलते हुए इन्हे इनकी सिद्धि की सीमा तक पहुँचा कर ही स्वयं दम लेना चाहते हैं। हमारी इस प्रकार की मन स्थिति उत्पन्न करने के लिए कवि न जाने कितने प्रकार की अनहोनी घटनाओ तक का समावेश कर देता है। वैसे नायको की निपुणता अथवा कभी-कभी कतिपय चमत्कारो का सहारा देकर हमें उस नैराश्य से भी वचा लेना चाहता है जिसके कारण, न केवल कथाप्रवाह की रोचकता नष्ट हो सकती थी, अपितु हमे कोई ठेस तक लग जा सकती है। अत में, जव वैसे नायको को अपने यत्नो में सफलता प्राप्त हो जाती है तो हम स्वभावत. सतोष की साँस लेने लग जाते है। हमे कभी-कभी यहाँ तक भी प्रतीत

होने लग जाता है कि वह विजय केवल उस नायक की न होकर वस्तुत हमारी भी कही जा सकती है। इसी कारण, ऐसी प्रेमकथा का एक स्पप्ट चित्र हमारे हृदयो पर भी उभर आता है और हमे पूर्ण प्रभावित कर देता है। फलत. हमें ऐसा लगता है कि यदि इन सूफियो की ऐसी रचनाओ का उद्देश्य अपने मतानुमोदित प्रेमसाधना के विविध अगो का चित्रण अथवा उसके आरभ, विकास एव परिणति का यथावत् स्पप्टीकरण मात्र ही रहा करता हो, यदि ये उन नायकों के रूप मे अपने सालिको को अकित कर उनकी विविध चेप्टाओ के उदाहरणो द्वारा इनके क्रमिक अभ्यास जनित प्रगति का हमे कोई आभास दिलाना चाहते हो तो इसमे सन्देह नही कि ये उसमे वहुत कुछ कृतकार्य भी कहे जा सकते है। इस प्रकार की रचना-शैली का आरभ, सर्वप्रथम चाहे जहाँ से भी हुआ हो और इसकी वर्णन-पद्धति का मूलस्रोत चाहे किसी अनिश्चित काल से आती हुई लोक-प्रचलित प्रेमकहानियो तक में ही न ढूँढा जा सकता है इसे अपनाकर सूफी कवियो ने वडी दूरदर्शिता से काम लिया है और इसकी सहायता द्वारा ये एक ऐसे दुरूह विषय की ओर भी इगित कर सके है जो न केवल कठिन, प्रत्युत रहस्यमय भी था।

इस प्रकार की सूफी प्रेमगाथाओ के आदर्श समझे जाने वाले फारसी के सूफी प्रेमाख्यानो के नायको को ठीक इसी प्रकार आचरण करते हुए नही दिखलाया गया है जिस कारण, वे सूफी-साधको के कुछ और भी निकट से जान पडते हैं। प्रसिद्ध फारसी कवि निजामी की रचना 'खुसरो शीरी' के अतर्गत दो प्रेमियो की चर्चा आती है जिनमे से एक तो खुसरो परवेज है जो वादशाह है और जिसे सुन्दरी शीरी की सौन्दर्य की प्रशसा सुनकर उसके प्रति प्रेम हो जाता है। प्रशसक शाहपुर इसकी चर्चा शीरी से भी जाकर करता है और उसे इसकी ओर आकृष्ट कर देता है जिसके अनन्तर दोनो का विवाह भी हो जाता है। परंतु उसकी कहानी का दूसरा प्रेमी एक शिल्पी मात्र है जिसका नाम फरहाद है और जो शीरी के प्रति अनुरक्त हो जाने पर उसकी प्राप्ति की आशा मे कोहे वेसनून (एक पहाडी) को काटकर कोई नहर वनाने तथा उसके द्वारा उक्त प्रेमिका के लिए दूध वहाकर लाने जैसे विकट कार्य मे भी प्रवृत्त हो जाता है तथा उसकी एक प्रतिमा को भी

अपने सामने रख लेता है। कहते है कि वह इस प्रकार के दुर्घट व्यापार को सम्पन्न भी कर देता है, किंतु इसी वीच मे जव उसकी प्रेमिका की मृत्यु का प्रवाद फैला दिया जाता है तो वह पर्वत से गिर कर अपने प्राण भी दे देता है। इस प्रकार यहाँ पर प्रधान प्रेमी कदाचित् फरहाद ही ठहराया गया है जो अपनी प्रेमपात्री की प्राप्ति के लिए एक दुष्कर कार्य तक को भी स्वीकार करता है। अत में, इस ओर सफल होने की दशा तक पहुँच कर भी अपने ध्येय की उपलब्धियो मे कृतकार्य नही हो पाता। निजामी कवि के एक अन्य प्रेमाख्यान 'लैला मजनूँ' के अतर्गत उसका नायक एक अमीर का लड़का 'कैस' दिखलाया गया है जो एक मकतव में किसी वालिका 'लैला' के साथ पढता है और वे दोनो ही एक दूसरे के ऊपर प्रेमासक्त हो जाते है। लैला के पिता को जव यह ज्ञात होता है तो वह अपनी पुत्री के ऊपर नियत्रण डाल देता है जिससे कैस के मार्ग मे वाधा आ पडती है और वह इसके कारण, क्षुव्ध होकर भी अपने व्रत से विचलित नही होता। लैला की प्राप्ति के लिए यत्नशील वनकर वह इधर-उधर चक्कर लगाता और नितान्त व्यग्र वना घूमता दीख पडने लगता है और वह 'मजनूँ' (पागल) तक कहलाकर प्रसिद्ध हो जाता है। इधर लैला का वाप उस पर और भी नियत्रण वढा देता है जिससे अवगत होकर 'कैस' वा मजनूँ आखो मे आँसू भर कर गली कूचे में गाता दीख पडने लगता है। वह न तो खाता है, न पीता है और न सोता है, प्रत्युत निरन्तर विरह मे व्याकुल होकर तडपता रहा करता है तथा 'लैला-लैला' पुकारा करता है। वह यहाँ तक अनुरक्त हो गया रहता है कि कभी-कभी वह उस हवा तक के सामने खडा हो जाता है जो लैला के मकान की ओर जाती हुई जान पडती है और उसके द्वारा अपनी प्रेमपात्री को अपनी दशा का सन्देश भेजने लगता है। इसका वाप इसकी दुर्दशा का परिचय दिलाकर लैला के साथ इसका विवाह करा देना भी चाहता है, किंतु उसे इसमे सफलता नही मिल पाती। वह तव इसे समझाने की चेष्टा करता है और इसे 'कावा' तक भी ले जाता है, किंतु वहाँ पर भी यह लैला के लिए ही वरदान माँगता है। अत मे, जव लैला के माता-पिता उसका विवाह किसी इब्ने सलाम नामक अन्य व्यक्ति के साथ कर देते है तो मजनूँ जगलो और पहाड़ो मे भटकने लग जाता है। जव अपने पति की मृत्यु

हो जाने पर लैला उससे मिलती है, किंतु फिर मर भी जाती है तो यह उसकी कब्र पर जान दे देता है और इस प्रकार यह कथा भी दु खान्त ही वन जाती है। अतएव यहाँ पर हमे प्रेमी मजनूँ एक ऐसे एकान्तनिष्ठ प्रेमी के रूप मे दिखलाया गया है जिसकी क्रमश. कडी से कडी परीक्षा होती चली आती है, किंतु जो वरावर प्रतिहत होता हुआ भी अपने यत्नो मे दृढ बना रह जाता है तथा जिसे अत में असफल वन कर नष्ट भी हो जाना पडता है। इन दोनो प्रेमाख्यानो के प्रेमी नायक वस्तुत. अपनी-अपनी विकट परीक्षाओ मे खरे उतरते है, किंतु फिर भी वे असफल से ही चित्रित कर दिये जाते है। इस प्रकार, कदाचित् उनके द्वारा यह उदाहृत किया जाता है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रेमसाधना मे लगे हुए साधक के लिए अपने दृढ से दृढ बने रहने पर भी, उसे प्राप्त कर पाना कभी पूर्णत सभव नही कहा जा सकता।

प्रेमकथाओ की रूपरेखा ऐसे ढगो से यहाँ तैयार की जाती है कि वह किसी साधक की आध्यात्मिक चेष्टाओ मे अधिक असगत न सिद्ध हो सके तथा उनमे पडने वाले विघ्नो के सामने उसकी प्रबल निष्ठा की गभीरता ही सिद्ध होती चली जाय। यहाँ पर प्रेमियो द्वारा किसी अपरिचित प्रेमपात्री के लिए सुदूर देशो की विकट यात्रा भी नही करायी जाती, न ऐसी विभिन्न आकस्मिक घटनाओ को ही उनके समक्ष ला दिया जाता है जिनसे उनके मार्ग मे रुकावट पड सके। हिंदी की सूफी प्रेमगाथा मे इन बातो का समावेश करके उसके नायक की प्रवृत्ति को साहसिकता (adventure) की भावना से भी अभिभूत करा दिया जाता है जिससे उसका शौर्य सम्पन्न होना भले ही प्रमाणित हो जाय, इसके कारण उसकी एकान्तनिष्ठा को भी उतनी प्रवल प्रेरणा नही मिल पाती। उसमे हमें वह असहायता अथवा दयनीयता नही दीख पडती जिसके कारण एक सच्चा साधक अपने इष्ट के पति पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव प्रकट करता है। हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानो वाले प्रेमी नायक अधिकतर निपुण तथा सुसस्कृत है और वे अपने मार्ग मे विजय भी पाते चला करते है। यदि हम इनके प्रति आकृष्ट होते है और इन्हे किसी सच्चे साधक की कोटि मे रखने की ओर प्रवृत्त होते है तो ऐसा केवल इसीलिए कर पाते हैं कि हमे इनके पहले सभ्रान्त एव स्नेहपात्र वने रहने का पता

चल चुका रहता है तथा इनके साथ हमारी कुछ सहानुभूति तक वन गई रहा करती है। अतएव, यहाँ पर हमे जितना किसी घोर वैपम्य का आधार मिला करता है, वहाँ उतना उस दैन्य का भी पता नही चल पाता जो किसी साधक की दशा में कही अधिक उपयुक्त गुण माना जा सकता है। हिंदी की इन प्रेमगाथाओ में यह अश कदाचित् विभिन्न लोककथाओ से छनकर आ गया है और इसको प्राय प्रत्येक देश के कथासाहित्य मे भी देखा जा सकता है। इस अग के यहाँ पर न्यूनाधिक महत्वपूर्ण रूप धारण कर लेने के कारण, इन प्रेमगाथाओ पर अधिकतर कहानीपन का भी रंग चढ़ जाता है जिससे घटना-वैविध्य तथा विवरण-वाहुल्य की प्रधानता हमार ध्यान को स्वभावत उसके प्रमुख लक्ष्य से भिन्न दिशा की ओर भी आकृप्ट करने लग जाती है। फलत जिस कथासूत्र को हम केवल एक माध्यम के रूप मे ही स्वीकार कर उसे दृप्टान्त मात्र का ही मूल्य प्रदान कर सकते थे, वह कभी-कभी हमारे सामने एक विचित्र-सा जाल भी वुन दिया करता है और उसके आवरण को भेद कर वर्ण्य विषय पर दृप्टि जमाये रखना हमारे लिए कठिन हो जाया करता है। यही कारण है कि जायसी जैसा निपुण कवि तक भी अपनी रचना 'पद्मावत' के अतर्गत उस आदर्श प्रेमसाधना को यथेप्ट रूप मे उदाहृत नही कर पाया है जो एक सूफी होने के नाते उसको अभीष्ट था।

(८)

उत्तरी भारत के हिंदी सूफी प्रेमाख्यानो के मूलकथानक एव मूलप्रेरणा पर विचार करते समय हमे पता चलता है कि उनके रचयिताओ ने इसके लिए विभिन्न स्रोतो को अपनाया था तथा उन्हे प्राय. अपने ढग से रूपरग देकर सजा दिया था। 'चदायन' की चर्चा करते समय हम देख चुके है कि वह रचना मूलत एक लोकगाथा वा लोकगीत पर आधारित है जो एक वहुत विस्तृत क्षेत्र मे प्रचलित रही है तथा जिसके इसी कारण, विभिन्न रूपान्तर भी पाये जाते है। हमने यह देखा है कि उसकी मूलकथा के केवल उत्तरांश अथवा मैना की विरह पीर और उसके द्वारा 'सत' की रक्षा मात्र को लेकर भी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की जा चुकी हैं। इसी प्रकार हमें यह भी जान पड़ता है कि उसके अनन्तर वाले

दूसरे प्रेमाख्यान 'मृगावती' का कथानक भी संभवत. किसी लोकप्रचलित प्रेम-कथा पर ही आश्रित रहा होगा और इस बात की ओर उसके कवि तक ने भी सकेत कर दिया है। परतु उसी प्रकार वैसे तीसरे उपलब्ध प्रेमाख्यान 'पद्मावत' के भी विषय मे हम ऐसा नही कह सकते। इस रचना के दो खडो मे प्रथम का सम्बध यदि किसी प्रेमकहानी के साथ जोडा भी जा सकता है तो इसके दूसरे का मूल स्रोत राजस्थान के इतिहास अथवा उसके साथ दिल्ली के सघर्प के एक प्रसिद्ध प्रसग मे भी ढूंढा जा सकता है। दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिजली द्वारा किया गया चित्तौर पर आक्रमण इतिहास प्रसिद्ध है और इतिहास के ग्रथो मे उसका स्पष्ट विवरण भी मिलता है। सूफी कवि जायसी ने अपनी रचना के अतर्गत उसे अपनाते समय वहुत कछ कल्पना से काम ले लिया है। इतिहास के प्रामाणिक ग्रथो को देखने से पता चलता है कि उनमे इस प्रेमाख्यान के भीतर वर्णित कई घटनाओ का अस्तित्व तक नही है, न केवल वहाॅ पर चित्तौड़ के राजा रतनसेन द्वारा की गई किसी सिंहल-यात्रा का वर्णन नही आता, अपितु वहाँ पर किसी ऐसी रानी का भी उल्लेख नही पाया जाता जिसका नाम 'पद्मावती' वा 'पद्मिनी' रहा हो तथा जिसे अपनाने के यत्न मे उस गढ़ पर चढाई करके सुलतान ने ठीक उसी प्रकार व्यवहार किया हो जिसके सम्बध मे यहाँ पर चर्चा की गई है[1]। यह अवश्य है कि 'पद्मावत' के कुछ पहले रची गई समझी जाने वाली असूफी प्रेमगाथा 'छिताई वार्ता' मे भी अलाउद्दीन के मुँह से पद्मिनी प्रसग की चर्चा करायी गई है।[2] इसके आधार पर इसकी प्रामाणिकता के विषय मे अनुमान किया जा सकता है, किंतु यहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि सभव है, इसकी कल्पना जायसी के वहुत पूर्व से ही कर

१. माडर्न रिव्यू (नवंबर १९५०, पृ० ३६१-८) हिंदी अनुशीलन (वर्ष ६ अंक ३ पृ० २६-३१ साहित्य सन्देश (भा० १३ अं० ६ पृ० २४९-५०) तथा इन्द्र चन्द्र नारंग कृत 'पद्मावत का ऐतिहासिकता' (इलाहावाद १९५६ ई०) इत्यादि।

२. छिताई वार्ता (ना० प्र० सभा, काशी सं० २०१५), पृ० ४६।

ली गई हो तथा इसी कारण अपनी-अपनी रचनाओ का निर्माण करते समय इन दोनो प्रेमाख्यानो के कवियो ने उस तीसरे आधार से ही प्रेरणा ग्रहण कर ली हो। इस सम्बध में यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि जिस प्रकार उक्त 'छिताई वार्ता' के अतर्गत 'पद्मिनी प्रसग' का उल्लेख आता है, उसी प्रकार 'पद्मावत' में भी 'छिताई प्रसग' का उल्लेख आता है । उसी प्रकार, 'पद्मावत" मे भी 'छिताई-प्रसग' की चर्चा करा दी गई[1] है जिससे इन दोनो से सम्वद्ध घटनाओं को ओर भी हमारा ध्यान चला जाता है तथा हम इन दोनो के घटित होने के ठीक अवसरों की भी समीक्षा करने लग जाते है। फलत हमे पता चलता है कि ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार 'छिताई प्रसग' वाली परिस्थिति पद्मिनी-प्रसग वाली तथा कथित घटना से पहले ही आ जाती है । इस प्रकार, सुलतान द्वारा उसके अवसर पर इस दूसरी की चर्चा कराना यो भी इतिहास विरुद्ध पडता है । वास्तव में, सिंहलद्वीप, पद्मिनी नारी, प्रेमी का 'जोगी' वन जाना अथवा उसका किसी योगी से सहायता लेना, शिव-पार्वती जैसे देवताओ की कृपा प्राप्त करना तथा अपनी यत्नो मे सुए जैसे पक्षी अथवा दूतों से सहयोग पाना आदि वातें किसी प्रेमगाथा विशेप तक ही सीमित नही जान पडती और इनके प्रयोग कथारूढियो जैसे होते आए हैं । अतएव, यदि किसी पद्मिनी नारी की राजा रतनसेन की कथा मे भी कल्पना कर ली गई हो तथा उस रूपवती स्त्री के व्याज से सुलतान अलाउद्दीन जैसे कामुक वादशाह द्वारा चित्तौड की चढाई करायी गई हो और उसमे दर्पण वाली उपयुक्त घटना का भी समावेश कर दिया गया हो तो इसमे कोई आश्चर्य की वात न होगी, न यही असभव कहा जा सकेगा कि ऐसा पहले से ही कर दिया गया था ।

इसी प्रकार शेख मझन की 'मधुमालती' के कथानक का मूलस्रोत भी किसी पुरानी प्रचलित कहानी मे ही ढूँढी जा सकता है । स्वयं मझन का कहना है कि इसकी 'आदि कथा द्वापर मो भई थी' और यह 'कलियुग मो भाखा' के

१. पद्मावत, चिरगाँव झाँसी, सं० २०१२, पृ० ५१२ ।

माध्यम से गायी गई थी[1]। जायसी के उपर्युक्त 'पद्मावत' मे एक स्थल पर उसके रचना-काल के समय तक प्रचलित कई प्रेमकहानियों का उल्लेख किया गया मिलता है जिसमें एक के विषय मे बतलाया गया है—

साधा कुवर मनोहर जोगू । मधुमालति कह कीन्ह वियोगू[2] ॥

जिसमे ध्वनित होता है कि इस प्रकार की किसी कहानी का ज्ञान उस कवि को भी रहा होगा। परतु इसके साथ ही हमें यह भी पता नही चलता कि वह कहानी केवल मौखिक रूप में ही प्रसिद्ध रही होगी अथवा उसे किसी ने कोई लिखित रूप भी दे दिया होगा। इसके अतिरिक्त उस कथा के नायक एवं नायिका के नामो पर प्रचलित अन्य अनेक रचनाओं की भी चर्चा की जाती है। यदि केवल ऐसे नामसाम्य को ही महत्व दिया जाय तो इन पात्रों के नामो जैसे लगते हुए दो नाम 'मालती-माधव' नामक भवभूति के नाटक मे भी, दो प्रेमियों के ही आते हैं। किंतु उसकी कथा के साथ कदाचित् इसका कोई भी साम्य नही दीखता। इसी प्रकार इस प्रसंग में, एक अन्य रचना 'मधुमालती' का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसके रचयिता कोई चतुर्भुज दास नामक कायस्थ हैं और जिसका रचना-काल किसी-किसी के अनुसार मझन से पहले का भी बतलाया जाता है। परतु इस 'मधु मालती' की कथा उससे भी नितान्त भिन्न दीख पडती है जिससे इसके उसका आधार होने का कोई प्रश्न ही नही उठता। चतुर्भुज दास की इस 'मधुमालती' की कथा का नायक मनोहर तथा इसकी नायिका मालती पहले किसी चटसार मे एक साथ पढते हुए दिखलाये जाते है और इनका प्रेम, कदाचित् मजनूँ (कैस) एव लैला की भाँति उस परिस्थिति मे ही जागृत होता है; जहाँ पर मंझन की उस रचना का नायक मनोहर कुछ अप्स-[र]ा द्वारा रातोरात उठा कर मधुमालती की चित्रसारी में कर दिया जाता है, [जहाँ] पर एक दूसरे को आकस्मिक ढग से उपस्थित पा कर उस पर मुग्ध हो

१. मंझन कृत मधुमालती, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी (सन् १९५७ ई०), पृ० १५।
२. पद्मावत प्रकरण २३३, पृ० २२३।

जाता है। अतएव, लगभग एक प्रकार के नामधारी नायक-नायिका की कथाओ के वर्त्तमान रहते हुए हमें इस वात का निश्चित पता नही चल पाता कि स्वय जायसी ने भी किस कथा का उल्लेख उक्त प्रसग मे किया होगा तथा उसका सम्बध मझन की रचना से हो भी सकता है वा नहीं।

मंझन की मधुमालती के अनन्तर भी इस प्रकार की वहुत-सी अन्य रचनाएँ निर्मित हुई है जिनमे से सभी के साथ इसका कोई साम्य निश्चित नही किया जा सकता, न यही कहा जा सकता है कि उनमे से कितने मे इसका ही अनुसरण किया गया होगा। दक्खिनी 'हिंदवी' के सूफी कवि नुसरती द्वारा लिखी गई एक रचना 'गुलशने इश्क' का पता चलता है जिसका रचना-काल हिजरी सन् १०६८ अर्थात् सन् १६५७ ई० है तथा जिसके विषय मे कहा जाता है कि उसके मूलाधार ग्रथ का पता लगाना कठिन है।[1] वही पर यह भी वतलाया गया है कि स्वय नुसरती के भी अनुसार उसके किसी मित्र "नवी इब्न अब्दुल समद ने इस किस्मे के लिखने की तरगीव दी" तथा यह "इसके कवल भी तहरीर में आ चुका था और एक साहव शेख मंझन नामी ने इसे हिंदी मे लिखा था। मझन की रचना के विपय में वहाँ पर यह भी कहा गया है कि इसका हवाला एक दूसरी किताव 'किस्सा कुँवर मनोहर मदमालत' में मिलता है जो फारसी मे है तथा जिसके रचयिता का नाम ज्ञात नही, किंतु जो सन् १०५९ हि० सन् १६४८ ई०) मे लिखी गई है, वही पर एक तीसरी ऐसी रचना की भी चर्चा की गई है जिसका 'महर व माह' नाम है और जिसके रचयिता आकिल खाँ राजी ने उसे सन् १०६५ हि० अर्थात् सन् १६५४ ई० मे लिखा था और उसमे भी यही किस्सा है। फिर एक अन्य ऐसी रचना हिसार के किसी हिसामुद्दीन द्वारा भी प्रस्तुत की गई है जिसका नाम 'हुस्न व इश्क' है तथा जो सन् १०७१ हि० अर्थात् सन् १६७० ई० की है। इन सभी का किस्सा एक ही है, "लेकिन हर मुसन्निफ के किसी कदर रद व वदल या इख्तिसार वयान किया है।" नुसरती 'गुलशने इश्क' मे चपावती और चन्दरसेन की दास्तान भी वडी खूबी के साथ

---

१. डॉ० मोलवी अब्दुल हक: नुसरती ('अंजुमन तरक्किए उर्दू नयीदिल्ली, पृ०१७।

मिला दी गई है। डॉ० अब्दुल हक का अनुमान है कि इन सारी ही रचनाओं का मूल रूप पहले से 'मकबूल और मशहूर' था और प्रत्येक लेखक ने इसे अपने यहाँ के प्रचलित रूप मे दिया है। आकिल खाँ को यह दक्षिण मे मिला होगा और सभवत उसकी रचना 'महर व माह' को ही नुसरती ने अधिक सुन्दर बना दिया होगा[1]। यहाँ पर उल्लेखनीय यह है कि उक्त अज्ञात कवि से लेकर हिसामुद्दीन तक अपनी-अपनी रचनाएँ लगभग २५ साल के ही भीतर लिख डालते है। इस प्रकार इसके मूल कथानक का किसी न किसी रूप मे उन दिनो विशेपतः प्रचलित रहना भी कहा जा सकता है। चतुर्भुज दास कायस्थ की रचना 'मधुमालती' की तथा जान कवि की 'मधुकर मालती' हिंदी की रचनाएँ है और उनका रचना-काल उपर्युक्त समय से पहले आ गया होगा, किंतु उनकी कहानियों के साथ मझन के वर्ण्य कथानक का कोई मेल नही है। यों तो जान कवि की रचना 'पुहुप बरिपा' की कुछ वाते भी मझन की 'मधुमालती' के कतिपय प्रसगो के समान दीख पडती हैं। हिंदी मे ही रचे गए किसी 'मधुमालती-कथा' का उल्लेख डॉ० सुकुमार सेन ने अपने 'वागला साहित्येर इतिहास' में किया है तथा उन्होंने उसका रचना-काल भी सन् १७५९ ई० दिया है,[2] किंतु उसकी कथावस्तु की ओर उन्होंने कोई सकेत नही किया है। उनके एक अन्य ग्रथ[3] के अतर्गत ऐसे नामो वाली कतिपय बगला रचनाओ की भी चर्चा की गई मिलती है जिनमे से कदाचित् प्रथम के रचयिता का नाम उन्होंने मोहम्मद कवीर दिया है। उन्होंने इस कवि की दो पक्तियो को उद्धृत करके यह भी सिद्ध कर दिया है कि इसने अपनी प्रेमकहानी का आधार किसी हिंदी ही 'केच्छा' (किस्सा) को बनाया है तथा उसे 'पाचाली' रूप दे दिया है। इसके सिवाय वही पर सन् १७८१ ई० मे रचित साकेर मामूद की रचना 'मधुमाला मनोहर' तथा सन् १८०६ ई० वाली सैयद हामजा कवि की 'मधुमालती' का भी उल्लेख किया गया है। परतु इनमे से किसी की भी मूलकथा की चर्चा नही पायी जाती, जिस

१. नुसरती, पृ० १९। २. प्रथम भाग, पृ० ०४४।
३. इसलामि वांगला साहित्य, पृ० ४१।

कारण यह कहना कठिन है कि यदि इनमे से सभी प्रेमाख्यानो के मूलस्रोत हिंदी के ही प्रेमाख्यान रहे हो तो ये उपर्युक्त भिन्न रूपो मे से किसका अधिक अनुसरण करते होगे। इसी प्रकार बंगला मे ही रची गई गोविन्दचन्द्र चट्टोपाध्याय की रचना 'मधुमालती' के विषय मे भी कहा जा सकता है। इसके सिवाय इस प्रकार की कहानी को लेकर गुजराती मे लिखी गई कतिपय रचनाओं का भी पता चलता है[1] और एक ऐसी रचना की कुछ पक्तियो के उदाहरण देकर श्री अगरचद नाहटा ने अनुमान किया है कि वह 'मधुमालती' किसी अज्ञात कवि की है तथा उसकी भी पूरी प्रति के देखे विना उसकी कथावस्तु के विषय मे कुछ कहा नही जा सकता, 'कितु ग्रथ-विस्तार के हिसाव से कथा वहुत वडी प्रतीत होती है[2]।" मझन के परवर्ती उसमान कवि ने भी 'मधुमालती' की कथा का उल्लेख अपनी रचना 'चित्रावली' के अन्तर्गत किया है[3]।

मझन वाली कथा मे किसी ऐतिहासिक घटना का भी कोई उल्लेख स्पष्ट रूप मे किया गया नही जान पडता, न उसके पात्रो अथवा स्थानो के ही विषय म कहा जा सकता है कि उनका वास्तविक परिचय किस प्रकार दिया जाय इसके नायक मनोहर के पिता का नाम सूरजभान है जो कनेसर का राजा है, वह अपनी प्रेम-यात्रा करते समय किसी विसरामपुर मे पहुँचता है और वहाँ के राजा की कन्या प्रेमा को देखता है जो उसकी प्रेमपात्री मधुमालती की सखी सिद्ध होती है। मधुमालती की माँ रूपमजरी है जो अपनी पुत्री को किसी राजकुमार ताराचद के साथ व्याह देना चाहती है, इत्यादि। इसमे वहुत सी ऐसी घटनाओ का समावेश भी कर दिया गया है जिनका घटित होना हमे यो असभव प्रतीत होता है। अप्सराओं जैसी किन्ही विचित्र स्त्रियो द्वारा मनोहर का सोते समय

---

१. ना० प्र० पत्रिका, हीरक जयंती अंक, सं० २०१०, पृ० १८७-९२।

२. हिंदुस्तानी (प्रयाग,) पृ० १०२। मधुमालती के एक नेपाली रूपान्तर का भी पता चलता है।—ले०

३. मधुमालति होई रूप दिखावा। प्रेम मनोहर होई तहं आवा॥

उठा लिया जाना तथा उसका कही दूर की चित्रसारी मे लाकर सुलाया जाना और फिर उसी प्रकार, अपने यहॉ पहुँचा दिया जाना तथा मधुमालती की माता द्वारा उसे किसी पक्षी का रूप प्रदान कर दिया जाना आदि इसकी अनेक ऐसी घटनाएँ है जिन्हे केवल किसी काल्पनिक कहानी की पृष्ठभूमि के रूप में ही सत्य-सा मान लिया जा सकता है। इन जैसी बातो का उतना महत्व, सूफीमत की प्रेमसाधना को उदाहृत करने वाले किसी दृष्टान्त की दृष्टि से भी सिद्ध नही किया जा सकता, अपितु इनके कारण इस प्रेमगाथा के उसके लिए बहुत कुछ अनुपयुक्त ठहरने की ही आशका की जा सकती है। जायसी की 'पद्मावत' तथा उसकी पूर्ववर्ती रचनाओ के भी अन्तर्गत ऐसी बातो का समावेश किसी न किसी रूप मे तथा किसी न किसी मात्रा तक कर दिया गया दीख पडता है जिसकी ओर इसके पहले भी सकेत कर दिया गया है। जहाँ तक पता चलता है ऐसी रचनाओ के कवियो ने इस प्रकार के प्रसगो को अधिकतर अपने-अपने ढग से तथा कभी-कभी मनमाने रूप मे बढ़ा-चढा कर भी अपनाया है और कदाचित् इस बात का भी विचार नही किया है कि ऐसा करना कहाँ तक उपयुक्त हो सकता है जिस किसी भी कथा मे समुद्र एव बीहड वनो को ला देना, प्राय राक्षसो अथवा अप्सराओ वा पौराणिक व्यक्तियो तक का अवतरण कर देना और ऐसे माध्यमो के द्वारा अनेक विचित्र तथा अल्प विश्वसनीय घटनाओ की सृष्टि करके कौतूहल उत्पन्न कर देने की चेष्टा करते रहना आदि बाते वस्तुत किसी मन-गढत दतकथा का ही अग बनायी जा सकती है। परतु ऐसी बातो से काम लेना प्राय. सभी प्रेमाख्यानो के कवियो ने उचित समझा है, जिस कारण ये कथा-रूढियो की कोटि तक मे आ जाती है।

मझन की मधुमालती तथा शेख़ कुतबन की 'मृगावती' की भाँति जायसी की 'पद्मावत' के साथ भी, नामसाम्यादि के कारण, तुलना मे रखने योग्य कई रचनाओ का पता चलता है जिनमे से कुछ का उल्लेख यहाँ पर अप्रासगिक न होगा। परतु जहाँ तक विदित होता है, यह जायसी की रचना ही कदाचित्

१. 'ना० प्र० पत्रिका', भाग १५, सं० १९९१, पृ० १८९-९४।

उन सभी से प्राचीनतर कही जा सकती है। 'पद्मावत' की रचना के अनन्तर, सभवत. सन् १५८८ ई० मे हेमरतन कवि ने अपनी पुस्तक 'गोरा बादल चौपाई' लिखी और उसमे उसने प्राय उन्ही प्रसगो का समावेश करने की चेष्टा की जिन्हे जायसी ने भी अपनाया था। इसी प्रकार किसी लालचद वा लक्षोदय कवि ने 'पद्मिनी चरित्र' की रचना मेवाड के महाराणा जगत सिंह के समय (सन् १६२८-५२ ई०) मे की और उसका रचना-काल स० १७०७ (सन् १६५० ई०) था। कवि जटमल द्वारा भी एक रचना लगभग इसी विषय को लेकर स० १६८० अर्थात् सन् १६२८ ई० मे ही प्रस्तुत की जा चुकी है। इन में कही गई कथा का एक तुलनात्मक अध्ययन करते हुए श्री मायाशकर जी याज्ञिक ने कतिपय प्रसगो की चर्चा की है और इनका कहना है कि यहाँ पर यदि हेमरतन की उक्त चौपाई पर विस्तृत विचार न भी करे, क्योकि उसकी कोई पूरी प्रति अभी तक उपलब्ध वा प्रकाशित नही हो सकी है उस दशा मे भी, हमें उसका परिणाम मनोरजक सिद्ध हो सकता है।" 'पद्मावत' पद्मिनी चारित्र एव 'गोरा वादल की वात' की कथाओ मे मुख्य-मुख्य भेद वतलाते हुए इन्होने लिखा है—(१) जायसी हीरामन तोता द्वारा पद्मिनी का सौन्दर्य-वर्णन कराकर राजा रतनसेन को उस पर मोहित कराता है, जहाँ जटमल भाटो द्वारा उसके रूप की प्रशसा कराता है। किंतु 'पद्मिनी चरित्र' के देखने से पता चलता है कि उसके कवि ने इसके लिए एक नयी घटना की ही आवतारणा कर दी है और कहा है कि राजा रतनसेन की पटरानी पद्मावती ने उनसे एक वार रोप मे आकर कह दिया कि कोई पद्मिनी क्यो नही लाते जिस पर उन्हे भी क्रोव आ गया और उसका मान-मर्दन करने के उद्देश्य से वे किसी खवास को लेकर पद्मिनी को लाने निकल पडे (२) जायसी का राजा रतनसेन स्वय कष्ट झेलता हुआ सिंहलगढ पहुँचता है, जहाँ जटमल उन्हे किसी योगी के योगवल द्वारा वहाँ पहुँचाता और लालचद उसे समुद्र तट तक ले जाकर वहाँ किसी औघड़नाथ द्वारा उसे योगवल की सहायता दिलवाता है। (३) जायसी राजा रतनसेन का विवाह उसके सुए द्वारा पद्मिनी से परिचित हो जाने तथा शिव की सहायता प्राप्त कर लेने पर कराता है और जटमल इसके

लिए योगी द्वारा परिचय दिये जाने की भी आवश्यकता नही समझता जान पडता, जहाँ लालचद की रचना के अन्तर्गत राजा के सिंहल पहुँचते समय वहाँ के राजा द्वारा अपनी 'बहन' पद्मिनी के विवाहार्थ ढिंढोरा पिटवाये जाने की भी चर्चा की गई मिलती है और रतनसेन को यहाँ अखाडे मे पराक्रम दिखलाना पड़ा है। (४) जायसी के अनुसार राघव चेतन को राजा रतनसेन उसके जादूगर होने के कारण निकाल देता है और यह अलाउद्दीन के पास जाकर उसे पद्मावती के लिए आमन्त्रित कर लाता है, जहाँ जटमल का राघव चेतन राजा के साथ सिंहल से आता है। राजा रतनसेन के सामने वह यहाँ पर आखेट के समय पद्मिनी की कोई पुतली बनाता है जिसकी जघा पर एक तिल रहता है और इस कारण उस पर सन्देह करके उसे राजा अपने यहाँ से निकाल देता है। किंतु लालचद राघव चेतन को किसी कथावाचक पडित के रूप मे चित्रित करता है और उसको किसी दिन राजा एव रानी के एकान्त मे क्रीडा करते समय विना किसी सूचना के पहुँच जाने के कारण उसे निकलवाता है। (५) इसी प्रकार 'पद्मिनी चरित्र' के अतर्गत राघव का दिल्ली जाकर अपनी पडिताई की ख्याति का प्राप्त करना तथा प्रपच रचकर सुलतान अलाउद्दीन के समक्ष किसी भाट द्वारा किसी राजहस पक्षी का पर उपस्थित कराना और इस प्रकार उससे भी कोमल अग वाली पद्मिनी के प्रति उसे आकृष्ट कर इसके लिए उत्तेजित कर देना दिखलाया गया है। किंतु ऐसी कोई चर्चा 'पद्मावत' मे भी की गई नही पायी जाती और 'गोरा बादल की बात' मे भी राजहस की जगह खरगोश का उल्लेख मिलता है तथा एकाध अन्य ऐसी बाते भी पायी जाती है, जो भिन्न है। इसके सिवाय हेमरतन, जटमल एवं लालचंद की उपर्युक्त रचनाओ मे हमें जितना ध्यान गोरा एव वादल की वीरता तथा पद्मिनी वा पद्मावती के हिन्दू नारीत्व को महत्व प्रदान करने की ओर दिया गया जान पडता है, उतना इस कथा के उन प्रेमव्यापारो का वर्णन करने की ओर नही जिनकी रोचकता के माध्यम द्वारा जायसी ने अपने अभीप्ट मत प्रचार की भी चेप्टा की है। इधर पता चला है कि 'सभा' को इसकी पूरी प्रति मिल गई है जिसका सपादन डॉ० शिव प्रसाद सिह कर रहे है।

जायसी की 'पद्मावत' के आधार पर पीछे वगला कवि अलाओल ने भी एक रचना प्रस्तुत की और उसका निर्माण आराकान के राजा तथादो मिन्तर (सन् १६४५-५२ ई०) के समय मे किया गया जिसे इस कवि के 'सादोमामृदार' का भी नाम दिया है। इस राजा का मत्री मगन ठाकुर भी स्वय काव्य-रचना में अभ्यस्त वतलाया गया है और वस्तुत वही अलाओल को इस कार्य की ओर प्रवृत्त भी करता है। अलाओल ने जायसी का अनुसरण करते हुए इनकी 'पद्मा-वत' के कई स्थलों का अक्षरग. अनुवाद तक कर डाला है। परतु फिर भी उसने अपनी रचना मे कुछ अन्य ऐसी वाते भी ला दी है जिनके कारण कतिपय विगेपताओ का समावेग हो जाता है। डॉ० सत्येन्द्रनाथ घोषाल ने इनमे से कुछ का उल्लेख किया है और वतलाया है कि अनुवादक ने वहुत से नामो तथा घट-नाओ के क्रम तक मे परिवर्तन कर दिये हैं, कथानक के विवरणोमे अन्तर ला दिया है तथा कही-कही उन्हे सक्षिप्त तक कर डाला है अथवा उन्हें छोड तक भी दिया है। इसी प्रकार अलाओल की रचना के अन्तर्गत कुछ ऐसी नवीन वाते भी आ जाती है जिनका पता 'पद्मावत' मे नही चलता तथा वहाँ पर कतिपय इतिहास एव परंपरा वाली वातो के विवरण मे भी अन्तर आ गया दीख पड़ता है[1]।

वास्तव मे जैसा डॉ० सुकमार सेन ने भी कहा है आलाओल ने 'पद्मावत' के "पात्रो और पात्रियो को यथा सभव वगाली साँचे मे ढाल दिया है और उसने दो एक अवातर कहानियो का भी समावेश कर दिया है"[२], किंतु इसके कारण मूल-काव्य वा कहानी को विगेप क्षति नही पहुँची है। परतु अलाओल की रचना की पूर्ण प्रामाणिक प्रति के अभी तक उपलव्ध होने मे सन्देह भी किया जाता है और यहाँ तक भी अनुमान किया जाता है कि प्राप्त प्रति के अतिम अंग को हम किसी अन्य कवि की रचना भी ठहरा सकते हैं। डॉ० घोपाल के अनुसार किसी एक सावारण पाठक के लिए भी यह प्रत्यक्ष हो जाना असभव नही कि दिल्ली कुँवर

1. Visvabharati Annals Vol IX (1959) p 66.

१. इसलामि वांगला साहित्य, पृ० ३१

के बदीगृह से रतनसेन के छूट कर आ जाने के अनन्तर की कथा केवल चलता कर दिये गए किसी कथन मात्र सी ही लगती है और उसमे कोई काव्यगत सौन्दर्य भी नही लक्षित होता। इसके अतिरिक्त इधर के अश मे जायसी वाले कथानक से भी वहुत अन्तर दीख पड़ता है। यहाँ पर ऐसे प्रसगो का भी आ जाना, जहाँ अत मे सुल-तान अलाउद्दीन चित्तौड आ गया और वह पाँच वर्षों तक वहाँ राजा रतनसेन के पुत्रो के साथ रहता रहा एक ऐसी बात है जिसको नितान्त निराधार और कपोल कल्पित कहा जा सकता है[1]।

'पद्मावत' की प्रेमकहानी का कोई पूर्ववर्ती आधार जान नही पड़ता और इस विषय मे केवल इतना ही अनुमान कर लिया जाता है कि जायसी ने इसे लिखते समय, अधिक से अधिक प्रचलित कथा-रूढियो को ही अपनाया होगा, किंतु इसका अग्रेजी अनुवाद करने वाले विद्वान ए० जी० शिरेफ ने उसकी भूमिका मे इस कवि के प्रसिद्ध ग्रथ 'कथा सरित्सागर' से परिचित होने की ओर भी सकेत किया है और कहा है कि यह वात असभव नही हो सकती[2]। कम-से-कम इस रचना की मुख्यकथा के राजा रतनसेन एव पद्मावती के किसी सूए की सहायता से विवा-हित होने वाले प्रसग का सम्वध तो उसकी उस कथा के साथ जोडा ही जा सकता है जिसमे रतनसेन की ही भाँति रूपसेन जैसे नाम के राजा को कोई 'हीरामन' जैसा ही चूडामन तोता पद्मावती जैसी चन्द्रावती के साथ विवाह करने मे अपनी भविष्य-वाणी द्वारा सहायक सिद्ध होता है। डॉ० घोषाल के अनुसार यह प्रसग किसी शिवदास की सस्कृत-कथा के कारण भी आ गया हो सकता है जिसकी वह रचना ईसा की पद्रहवी शताब्दी के पीछे की नही हो सकती और जिससे इसी कारण, जायसी का परिचित होना भी असभव नही कहा जा सकता[3]। पद्मावत के पहले हिंदी मे ही रची गई एक रचना 'लखमसेन पद्मावती'[4] नाम से भी आती है

1 Visvabharati Anna's pp. 189—90

2. Padmavat (English Translation) Royal Asiatic Society of Bengal (1944) p. I44

3. Visvabharati Annals pp. 69—70.

४. सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी : लखमनसेन पद्मावती, परिमल प्रकाशन, प्रयाग।

जिसकी नायिका का भी नाम पद्मावती है, किंतु उसका कथानक इससे नितान्त भिन्न है और सिवाय इसके कि उसके अंतर्गत भी कई कथा-रूढियो का समावेश लगभग उसी प्रकार किया गया मिलता है जैसा हमें जायसी की इस रचना मे दीख पडता है, इन दोनो मे अधिक समानता की सभावना नही जान पडती। कथा-रूढियो की दृष्टि से उसकी तुलना अन्य अनेक सूफी प्रेमगाथाओ से भी की जा सकती है जो 'पद्मावत' के पूर्व वा पश्चात् लिखी गई है।

मझन की 'मधुमालती' के अनन्तर लिखी गई सूफ़ी प्रेमगाथाओ में से ऐसी वहुत कम ही मिल सकती हैं जिनके मूलाधार कथानक की खोज के सम्वंध में अभी तक कोई यत्न किया गया दीख पडता है अथवा जिनका पीछे अनुसरण करने वाली रचनाओ का ही पता लगाया जा सका है और इस प्रकार उनके सम्वध में निर्मित हो सकने योग्य किसी कथानक-चक्र की सभावना की जा सकती है। उसमान कवि ने अपनी रचना 'चित्रावली' की प्रारंभिक पक्तियो मे उसके विपय में लिखते हुए वतलाया है कि इस "एक कथा को मैंने अपने हृदय से उत्पन्न किया है जो कहते समय भी मीठी जान पड़ती है और जो सुनते समय भी सुन्दर लगेगी। इसे मैंने जैसे सूझ पडा है वैसा ही वनाया है और जिसे यह जैसी सूझ पड़ेगी वैसी ही वह इसे वूझ पायेगा[1]"। उसने पीछे इतना और भी कह दिया है कि "इस प्रेम की कहानी को मैंने कह दिया है जिससे रात कट सकें" जिसका तात्पर्य या तो केवल कालयापन के अर्थ में ही समझा जा सकता है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि इस कथा के रचने का प्रयोजन वह 'कलि-स्याम रैन' वा कलियुग के समय वाले अवाधुंध से सजग रहकर अपने को वचाना ठहराता है[2]। उसमान की यह रचना कदाचित् अभी तक उपलव्ध उन सूफी प्रेमगाथाओ मे अंतिम कही जा सकती है जिसके ऊपर अभारतीय कथा-रूढ़ियो का प्रभाव प्राय. नगण्य-सा जान पड़ता है और जिसके कवि ने यहाँ की लोकगाथात्मक विशेपताओं को ही अधिक प्रश्रय दिया है। 'चित्रावली' की एक विशेपता इस वात मे भी दीख

१. चित्रावली, ना० प्र० सभा संस्करण, दोहा ३२ पृ० १४।
२. वही, दोहा ३४, पृ० १५।

पडती है कि इसे उसमान कवि ने मझन की 'मधुमालती' की भाँति सुखान्त रूप मे ही रखा है। इस रचना के अत मे उसने न केवल इसे नयी कथा बतलाया है, अपितु इतना और भी कह दिया है—

कवितन्ह मरन कथा कै गाई, मोहि मरत हिय लागु छोहाई ।।
औ जे प्रेम अमीरस पीया, मरै न मारै जुग जुग जीया ।।
एक जियन एक मरन संसारा, मरि मरि जियइँ ताहि को मारा [1]।।

जिन्हे पढ कर हमे मझन की भी ये पक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

उतपति जग जेती चलि आई, पुर्खमारि ब्रज सती कराई ।।
मै छोहन्ह येहि मारि न पारेउ, सही मरिहि जे कलि औतारेउ ।।
सत सुनो संसार सुभाऊ, जो मरि जिये सो मरै न काऊ ।।[2]

और ऐसा लगता है कि इन्हे पढ वा सुनकर ही उसने वैसा लिखा होगा। इसी प्रकार उसमान ने यहाँ पर अनेक वैसी बातो को भी दोहरा दिया है जिन्हे उसके पूर्ववर्ती सूफी कवियो ने अपनी लघुता प्रदर्शित करने मात्र के लिए लिखा था तथा उसने उनके अनेक शब्दो तक को भी लगभग उसी प्रकार अपने प्रयोग मे ला दिया है।

'चित्रावली' के अनन्तर लिखी गई ऐसी प्रेमगाथाओ मे से जान कवि के प्रेमाख्यानो के रचना-काल से ही हमे ऐसा लगता है कि उत्तरी भारत के सूफी कवियो का भी ध्यान अधिकतर उन कतिपय बातो की ओर जाने लगा जिन्हे दक्खिनी 'हिंदवी' के ऐसे कवियों ने शामी परपरा के निकट प्रभाव मे आकर अपनाना आरभ कर दिया था और जो अभारतीय भी कही जा सकती थी। इनमे से कुछ तो केवल कथा मे आ गए पात्रो अथवा स्थानो के नामो से ही सम्बद्ध है और उन्हे इसी कारण, उतना महत्व नही दिया जा सकता , न जिनके विषय मे यही कहा जा सकता है कि उन्हे इन कवियो ने किसी उद्देश्य से अपनाया होगा। इस प्रकार के उदाहरणो में जान कवि की 'मधुकर मालति' मे आये हुए तुर्किस्तान

---

१. चित्रावली, दोहा ६१७, पृ० २३६ ।
२. मधुमालती (हिंदी प्रचारक संस्करण) पृ० १६४ ।

के प्रसग अथवा उसी कवि की 'रत्नावलि' वाले ख्वाज़ा खिज्र खाँ के उल्लेख किये जा सकते हैं। इस सम्बध में स्वय जान कवि ने भी किसी नियम विशेष का पालन नही किया है और अपनी अनेक रचनाओ मे इसकी ओर ध्यान भी नही दिया है। इसके सिवाय शेख़ नवी आदि एकाध अन्य ऐसे कवि भी हो सकते है जिन्होंने इस प्रकार की बातों को कोई प्रश्रय नही दिया। परतु हमे ऐसा लगता है कि कासिम शाह की रचना 'हस जवाहर' के रचना-काल (हि० सन् ११४९ अर्थात् सन् १७३६ ई०) तक उक्त प्रकार की बातो को विशेष महत्व दिया जाने लगा था और न केवल नामादि की चर्चा, अपितु बहुत कुछ सास्कृतिक परपराओ के उल्लेखो तक मे, शामी समाज की बातो का समावेश किसी न किसी रूप मे कर दिया जाता था। जान कवि ने अपनी रचना 'मधुकर मालति' के अतर्गत उसकी नायिका के किसी एक 'विलाइत' के बादशाह द्वारा एक सहस्र मुद्रा देकर चेरी के रूप मे क्रय कर लिये जाने की चर्चा की है जिससे उधर की क्रीतदासो वाली प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है। कासिम शाह ने तो अपनी रचना 'हस जवाहर' के अतर्गत बलख़ नगर के सुलतान बुरहानशाह और उसकी ३१ सुन्दर नारियो से ही कथा का आरभ किया है, ख्वाज़ा खिज्र खाँ के आशीर्वाद से उसके 'हस' नामक पुत्र के उत्पन्न होने का उल्लेख किया है, बाज एव परियो का प्रसग लाया है तथा हस के छुरी से मार दिये जाने आदि ऐसी बहुत-सी बातो की चर्चा की है जिनसे यहाँ के लोग उतने परिचित नही थे। फिर भी यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के प्रसंगों का अपनी रचना मे समावेश करते हुए भी, कासिम शाह ने इस बात का ध्यान रखा है कि 'हंस', 'शब्द', 'चीर' जैसे कुछ शब्दो के प्रयोग उनके भारतीय रूपो में ही किये जायँ तथा बलख़ एव चीन के निवासी पात्रो के बीच विवाह-सम्बध स्थापित करते समय भी अधिकतर परिचित भारतीय प्रथाओ के ही वर्णन किये जायँ।

जिस समय जान कवि राजस्थान मे अपनी प्रेमगाथाएँ लिखने मे व्यस्त रहे, लगभग उसी समय गोलकुडा सल्तनत का गवासी नामक कवि भी अपने सूफी प्रेमाख्यानो की रचना कर रहा था। उसने कदाचित् सन् १६२६ ई० मे अपनी प्रसिद्ध रचना 'सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल' प्रस्तुत की जिसको न केवल उन्होंने फारसी

भाषा मे प्रचलित छदो वा दूहो का ही प्रयोग करके दक्खिनी 'हिंदवी' मे पूरा किया, अपितु उसके अतर्गत उसने एक ऐसे कथानक को भी अपनाया जिसका सम्बध मिस्र देश के वातावरण तथा वहाँ के निवासियो आदि के साथ भी था। उसमे सिंहल आदि की चर्चा केवल प्रासगिक रूप मे ही समाविष्ट कर ली गई थी तथा उसे उस कवि ने किसी फारसी गद्य की पुस्तक की कहानी के आधार पर भी रचा था। उस कथा की प्रसिद्धि गजनवी सुल्तान महमूद के समकालीन किसी दमिश्क के दरबार तक मे थी और यह वहाँ किसी पुस्तक मे भी उपलब्ध थी। गवासी ने उस कहानी के ढाँचे पर अपनी रचना को तैयार करते समय बहुत कुछ अपनी ओर से भी अवश्य मिलाया, किंतु उसकी शामी परपरा सम्बधी प्राय. सभी बाते ठीक पूर्ववत् ही रह गई। इसी प्रकार गवासी के ही समकालीन मुल्ला वजही नामक एक अन्य सूफी कवि ने भी सन् १६३६ ई० मे वहाँ पर 'सवरस' नामक एक गद्यात्मक प्रेमगाथा की रचना की जिसमे उसने न केवल सीस्तान नगर के शासक से ही अपनी कहानी का आरभ किया, अपितु उसके भीतर उसने ऐसे पात्रो का भी अवतरण किया जो 'अकल', 'दिल' 'नजर', 'हिम्मत', एवं 'इश्क', जैसे नामधारी थे तथा जिनके ऐसे नामकरण का उद्देश्य भी प्रत्यक्षत उस कवि द्वारा निर्दिष्ट किसी मत विशेष का स्पष्टीकरण एवं प्रचार ही कहा जा सकता था। तदनुसार हम देखते है कि इस प्रकार किये गए गवासी तथा मुल्ला वजही के यत्नों का कुछ न कुछ प्रभाव उत्तरी भारत के सूफी कवियो पर भी पड़ता हुआ दीख पडा। जान कवि एव कासिम शाह ने स्वय न्यूनाधिक गवासी का अनुकरण किया तथा मुल्ला वजही की रचना-शैली के आदर्श पर पीछे नूर मोहम्मद कवि ने अपनी 'अनुराग बाँसुरी' की रचना कर उसके पात्रो का साभिप्राय नामकरण कर दिया और इस प्रकार यहाँ की भी प्रेमगाथाएँ उन बातो से अछूती न रह सकी। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नूर मोहम्मद ने अपनी इस रचना के पात्रो का नामकरण करते समय उन्हे 'अत.करण', 'जीव', 'चित्त', एव 'सर्वमगला', आदि कहकर ही अभिहित किया तथा उसमे आये हुए स्थानो तक को 'मूरतिपुर' वा 'स्नेह नगर', जैसे ही नाम दिये, किंतु उसका ऐसा करना भी केवल हिंदी भाषा का व्यवहार करने के ही उद्देश्य से था। उसने अपनी इस रचना के आरभ मे ही इस बात की ओर

संकेत कर दिया है कि उसे अपने धर्म की प्रतिष्ठा ही अभीष्ट है।

नूर मोहम्मद के कुछ दिनों पीछे उत्तरी भारत के हिंदी कवि शेख निसार ने अपनी 'यूसुफ जुलेखा' नामक रचना लिखी जिसका रचना-काल हिजरी सन् १२०५ अथवा सवत् १८४७ भी दिया गया मिलता है और जो इसी लिए सन् १७९० ई० कहला सकता है। कवि शेख निसार ने अपनी प्रेमकहानी की कथावस्तु को स्पष्ट रूप में शामी भाडार से चुना है। उस कथानक का वीजरूप मुसलमानो के वर्मग्रथ 'कुरान शरीफ़' मे भी वर्त्तमान है[1] तथा जिसके आवार पर इसके पहले फारसी मे कुछ मसनवियाँ लिखी भी जा चुकी थी। कहते है कि प्रसिद्ध कवि फिरदौसी (मृ० सन् १०२० ई०) ने इस विषय को लेकर अपनी एक मसनवी 'यूसुफ़ और जुलेखा' की मे रचना की थी और उसके सभवत समकालीन अब्दुल मुयीद ने भी कोई मसनवी इस नाम से ही रच डाली थी[2]। प्रसिद्ध जामी ने भी अपनी एक इसी नाम की रचना को सन् १४९२ ई० मे पूरा किया जिसके कारण वह अमर हो गया। शेख निसार कवि अत्यत नम्र स्वभाव का था और उसके हिंदी, फारसी, तुर्की, एवं संस्कृत के माध्यम से सात ग्रंथो की रचना कर लेने पर भी इस प्रेमकथा को लिखने के लिए केवल इसी कारण इच्छा प्रकट की कि प्रेमरसपर्ण बातो का किसी सच्ची कहानी द्वारा ही कहा जाना चाहिए और इसके लिए 'हंस जवाहर' जैसी अविकतर काल्पनिक कहानियो का आश्रय नही ग्रहण करना चाहिए। इस कथा को विशेष रूप से अपनाने का वह एक और भी कारण देता है और वह कहता है कि मैं अपनी अनेक विपत्तियो का मारा था और अनेक कष्टो का अनुभव भी कर चुका था जिसका कारण मुझे स्वभावत. यही उचित जान पडा कि हजरत याकूब के पुत्र-विरह की कहानी लिखूँ। शेख निसार एक धार्मिक व्यक्ति है और उसने इस कथा को वहुत कुछ परपरानुरूप ही लिखने का यत्न किया है। यह भी एक संयोग की ही वात हो सकती है कि ठीक शेख निसार की ही भाँति

---

१. सूरे यूसुफ (पारा १२ व १३)।

2 M. A. Ghani: The Pre Mughal Persian in Hindustan, (Allahabad, 1941) pp. 137-8.

भुक्तभोगी बनकर हिंदी के एक अन्य सूफी कवि नसीर ने भी अपनी 'प्रेमदर्पण' नामक रचना का निर्माण करते समय हिजरी सन् १३३५ वा सन् १९१७ ई० मे इस कथा को ही चुनना उचित समझा है और उसने भी अपनी इस रचना के आरभ मे वैसी ही 'आपबीती' का उल्लेख कर दिया है। 'प्रेमदर्पण' को इस प्रकार प्रस्तुत करते समय नसीर कवि ने कदाचित् उर्दू कवि फिगार का अनुसरण किया था, किंतु फिर भी यह कोई अनुवाद नही है। कवि नसीर की इस प्रेमगाथा के लिखने के दो वर्ष पीछे फिर बगला कवि गरीबुल्ला ने भी इसके कथानक के आधार पर अपनी एक रचना, पीर बदर एव बडखाँ गाजी के सवाद रूप मे तैयार की जो बहुत प्रसिद्ध है[1]। दक्खिनी 'हिंदवी' के कवि मीराँ हाशमी बीजापुरी (मृ० सन् १७०५ ई०) ने शेख़ निसार एव कवि नसीर की रचनाओ के पहले सन् १६७९ ई० में ही अपने प्रेमाख्यान 'यूसुफ जुलेखा' की रचना कर डाली थी।[2] इस कारण संभव है वह भी इन दोनो उत्तरी भारत के कवियो की दृष्टि मे आ चुकी रही हो।

(६)

उत्तरी भारत के प्रेमाख्यानो की परंपरा मे आने वाली प्राय सभी रचनाओ के अंतर्गत प्रेम एव विरह के महत्व का उल्लेख भी यथास्थल किया गया मिलता है। इनमे यह भी बतला दिया गया दीख पडता है कि किस प्रकार इन्हे सर्वोच्च स्थान तक दे सकते है। कभी-कभी तो इस प्रकार की बाते उनके पात्रो द्वारा ही कहला दी जाती है और उनके शब्दो द्वारा उनकी स्वय अपनी अनुभूति का परिचय दिला कर कदाचित् यह सिद्ध करने की चेष्टा भी कर दी जाती है कि ये बाते केवल सैद्धान्तिक ही नही, प्रत्युत व्यवहार मे लायी भी जा चुकी है। 'चदायन' की पूरी प्रति अभी तक प्रकाशित नही हो सकी है, किंतु उसकी अधूरी प्रतियो से भी उद्धृत की गई कतिपय पक्तियो मे हमे इसके एकाध सुन्दर उदाहरण मिल जाते है

१. इसलामि बांगला साहित्य, पृ० १०७।
२. श्री राम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य (हैदराबाद, १९५४ ई०) पृ० १४९-५२ और ४९१।

और ऐसा अनुमान होता है कि वैसी वाते उसमे अन्यत्र भी उपलब्ध हो सकती होगी। चदा नायिका जिस समय श्राति का दशा मे पडकर मुरझाई-सी लगती है और वह लोरक के निकट वढकर अपना सिर झुका लेती है उस समय उसे सवोधित करते हुए यह कहता है—

लोरिक कहा सुनहु धन, कवन करब अव सांझ ।
भोग पारस परम रस, हिरदय पातन मांझ[1] ।।

अर्थात् हे प्रिये, क्या तुम्हे इस वात की चिंता हो रही है कि आगे किस प्रकार समय कटेगा ? क्या तुम्हे यह विदित नही कि अपने भाग्य पर अवलवित रहने वाले मिलन जन्य उत्कृष्ट (प्रेम) रस का अस्तित्व हमारे हृदय पत्रो मे ही अतर्निहित है ? और इसीलिए हमें निराश हो जाने का कोई कारण नही हो सकता ? इसी प्रकार उस नायक के ही मुख से उसकी विरह-जन्य दशा तथा इसके कारण उसे समझ पड़ने वाली वातो का भी एक स्थल पर परिचय दिलाया गया है ।

सत कै पूर चांद हर लीन्हा, सगरै रैन खोज मैं कीन्हा ।
खोजत पायों तोता, धर्‌यो भीर की वार ।
झूठे चित विराग भरानै, जाना सब संसार[2] ।।

अर्थात् चदा ने मानो मेरा सभी कुछ हर लिया, क्योकि मैं उसे सारी रात ढूँढता ही रह गया। उसे ढूँढते समय मुझे केवल तोता मिला जिसे ही मैंने भेड के वाल जैसा (अल्प सतोष का आधार) मान लिया तथा उसे पकड़ लिया। मेरा चित्त व्यर्थ ही विराग मे उलझा हुआ है। अव मुझे इस वात का अनुभव हो गया कि (एक विरही की दृष्टि में) यह सारा ससार ही मिथ्या है, इसमे कुछ भी तत्व नही है जिससे उसके विरहाभिभूत मन.स्थिति के ऊपर पूरा प्रकाश पड़े विना नही रहता।

इसी प्रकार शेख कुतवन की 'मृगावती' वाली अधूरी प्रतियो की कुछ पक्तियों द्वारा भी उपर्युक्त वातो को कुछ अंशो मे उदाहृत किया जा सकता है। 'मृगावती'

1. Rare Fragments etc. p. 14.
2 Do p. 15.

का नायक राजकुमार जब अपनी प्रेमिका के दरबार तक पहुँच पाने में अपने को असमर्थ पाता है और वह अपनी विवशता के कारण अधीर बनकर यह मान लेता है कि मेरी यहाँ पर कोई पूछ न हो सकेगी तो उसे अपनी विरह-दशा का और भी तीव्र अनुभव होने लग जाता है और वह अपनी कींगरी लेकर बजाने मात्र पर ही तुल जाता है। फिर तो उसकी दशा की ओर सभी को आकृष्ट होना पड जाता है। इस रचना के कवि ने उस प्रसंग का वर्णन करते समय उसका एक मार्मिक चित्र खींचा है और कहा है —

कुंअर देखि कै चिंता भई। मोरी चाह कैसे पहुँचै जाई॥
राजा राउ जोहार न पावहीं। हमरी गनती केकरे मन आवहीं॥
बहुरि वियोग भएउ सिर सेती। कहेसि बात नहिं आवइ एती॥
कींगरी लीहे वियोग बजावइ। सभही सुन वोही देखन आवइ॥
सुनि वोयोग सभही एन बोला। भा इहु राग आसन हरि डोला॥
जेइरे सुनी उसे भुलीउ, चित न रहीउ काहि।
बज्र करेजा जाही कर, भा वीयोग उर ताहि॥५॥
नगरी सगरी वीयोग संतावइ। घर घर इहै बात जनावइ॥
योगी एक कतहुँ तें आवा। वीरही वीयोग संताप बजावा॥
एहीरे बात मृगावती सुनी। आएसु एक आवो बहु गुनी॥
आग्या भई बोलावहु ताही। पूछहु कवन देस कर आही॥[1]

अर्थात् वहाँ की स्थिति को देखकर कुँवर को इस बात की चिन्ता हो गई कि मेरी बात (मृगावती तक) कैसे पहुँच सकेगी। यहाँ पर तो राजा राव सभी इसकी 'जोहार' करते जान पड़ते हैं, ऐसी दशा में मेरी यहाँ कौन पूछेगा। (इसके अनन्तर) विरह-व्यथा उसके सिर पर फिर सवार हो गई और उसने अपने मन में समझ लिया कि अब इस प्रकार मेरा काम नही चल सकेगा। उसने अपनी कींगरी उठाकर विरह के गीत गाना आरंभ कर दिया जिसे सुनते ही सब लोग

१. सूफी काव्य-संग्रह (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९५८ ई०) पृ० ११४ पर उद्धृत।

उसे देखने के लिए आने लगे। उसकी वियोग भरी वाते समझकर सभी उसकी चर्चा करने लगे, उन्हे उसके प्रति सहानुभूति हो आई तथा हरि (भगवान) का आसन डोल गया। जिसने उसके विरह-वादन की ध्वनि सुनी उसे अपना आपा भूल गया और जिसका करेजा (हृदय) वज्र-सा कठिन था उसे भी वियोग ने प्रभावित किया। सारे नगर को वियोग ने सताना आरभ कर दिया और प्रत्येक घर में इसी वात की चर्चा होने लगी कि कही से एक विरह का मारा कोई 'योगी' आ गया है और यह वात मृगावती तक के कानो मे पड गई कि एक वहुत वड़ा गुणी आ गया है। फलत उसने आज्ञा दे दी कि उसे वुलाया जाय और उससे पूछा जाय कि वह किस देश का रहने वाला है।

जायसी की प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' की तो पूरी प्रति प्रकाशित भी हो चुकी है और उसमें आये हुए इस प्रकार के स्थलो से वहुत लोग परिचित होगे तथा उसमें स्वय कवि की ओर से कहे गए प्रेम एवं विरह सम्वधी सिद्धान्तो द्वारा पूर्ण रूप से अवगत भी हो चुके होंगे। जायसी ने अपनी इस रचना के अतर्गत, इसके नायक रतनसेन द्वारा, हीरामन तोता से पद्मावती के रूप एव गुण की प्रशसा सुनते ही यहाँ तक कहला दिया है—

तीनि लोक चौदह खंड, सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छांड़ि किछु औरु न लोना, जौ देखौं मन बूझि॥[1]

अर्थात् तीनो लोक एव चौदहो भुवन मे मुझे जो सव दिखलायी दे रहा है उसमें जव मैं विचार करके देखता हूँ तो, मुझे प्रेम को छोड़कर और कुछ भी दूसरा सुन्दर नही जान पडता। इसी प्रकार इस कवि ने प्रेम के मार्ग की निकटता वर्णन किया है, उसकी व्यापकता की ओर सकेत किया है तथा उसके विविध प्रभावो का भी चित्रण किया है और प्राय अपनी प्रत्येक धारणा की पुष्टि में दृष्टान्त भी देते हुए उसने उसके भीतर विरह की प्रधानता का भी उल्लेख किया है। जायसी के अनुसार—

१. पद्मावत (चिरगाँव संस्करण) पृ० ९३।

प्रेमहि मांह विरह औ रसा, मैन के घर मधु अंब्रित बसा ।।
निसत धाइ जौ मरै तो काहा, सत जौं करै वैसेइ होइ लाहा ।।[1]

अर्थात् प्रेम के भीतर विरह एवं रस दोनों ही विद्यमान है जैसे मोम के छत्ते में मधु का अमृत और वर्र दोनो ही रहा करते है। जो सत्यहीन होता है वह दौड-धूप कर के मर भी जाय तो कुछ भी लाभ नही, किंतु सत्यशील व्यक्ति को वैठे भी लाभ हो जाता है। इस प्रकार निर्दिष्ट प्रेम की विशेपता उसके मूलत विरहगर्भित होने मे ही प्रत्यक्ष होती है। इसीकारण, जायसी ने प्रेममार्ग को कठिन वतलाकर उसके आवार का स्वय परमात्मा एव सारे व्रह्माड की मौलिक एकता मे सन्निहित होना भी वतलाया है। उनका कहना है कि विरह के आदिस्रोत के, आदि सृष्टि के मूल-विच्छेद मे ही वर्त्तमान रहने के कारण, वह इतना व्यापक, महत्वपूर्ण एव अनिवार्य-सा भी लगता है और जव इसकी वास्तविकता का पता किसी को लग जाता है तो वह इस वात को वार-वार स्मरण करता हुआ पछताने लगता है और सोचता है कि ऐसी दशा का कारण क्या है—

हुता जो एकहि संग, हौ तुम काहे बीछुरा ?
अव जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ किछु ।।[2]

अर्थात् सदा एक ही साथ रहने वालो के वीच वियोग की स्थिति कैसे आ गई ? जिससे आज अपने हृदय मे भाँति-भाँति के भाव जागृत हो रहे है और अपनी इस विचित्र दशा का वर्णन करते नही वनता। वास्तव मे, सूफियो द्वारा इस प्रकार सोचे जाने के ही कारण, उनके हृदय मे परमात्मा के प्रति विरह की वेचैनी वढा करती है और वे उससे मिलने के लिए तड़पने लग जाते है। उनकी प्रेमगाथाओ के अतर्गत प्रदर्शित प्रेम-भाव के उदय और उसके विकास, उसके विरह रूप की गभीरता और उसके प्रभाव तथा इनके मूलत ईश्वरीय होने की सभावना आदि पर विचार करते समय, हमे इस कवि के उपर्युक्त कथन की सत्यता मे विश्वास

---

१. वही, पृ० १५९।
२. जायसी–ग्रंथावली (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५२ ई०), पृ० ६५४।

होने लगता है और हमे ऐसा लगता है कि उन सभी लोगो ने सभवत इसी विचार से प्रेरित होकर अपनी वे रचनाएँ प्रस्तुत की होगी ।

जायसी के परवर्ती शेख मंझन ने भी प्रेमतत्व का वर्णन करते हुए बड़े मार्मिक चित्र खीचे हैं। इस कवि के अनुसार प्रेम का सम्बंध पूर्णत मौलिक है और यह लगभग उसी प्रकार व्यापक ठहराया जा सकता है, जिस प्रकार जगत् की सृष्टि वाले सभी पदार्थो का एक दूसरे के साथ वाला हैं। ये सभी एक ही कर्त्ता द्वारा सिरजे गए हैं और उसी प्रकार, प्रेम के आधार पर एक दूसरे के साथ आत्मीयता के बधन में भी रहा करते है। 'मधुमालती' का नायक राजकुँवर इस बात से भलीभाँति परिचित जान पडता है और वह इसी कारण, अपनी प्रियतमा से बातें करता हुआ उसे बतला देना चाहता है कि वे दोनो, वस्तुत. पूर्वकाल से ही प्रेम के बंधन में बँधे आ रहे है। वह कहता है—

कहै कुँअर सुन पेम पिआरी, मोहि तोहि पूर्व प्रीति विधि सारी।
जा दिन सिरा आस विधि मोरा, तेहि दन मोहि दरसा दुख तोरा।

पूर्व दिनन्हि सों जानौ, तोहरी प्रीतिक नीरु ।
मोहि माटी विधि सानिकै, तो एह सरा सरीरु ।।[1]

वह प्रेमतत्व को दुख के साथ मिश्रित भी बतलाता है और वह इस बात का स्पष्टीकरण करते हुए इस प्रकार कहता है—

सुना जाहि दिन सृष्टि उपाई, प्रीत परेवा दीन्ह उड़ाई ।
तीनौ लोक ढूंढ़ि कै आवा, आपुजोग कहुँ ठौर न पावा ।
तब फिर हम जीव पैसो आई, रह्यो लोभाइ न किया उड़ाई ।
तीन भुअन तब पूछें बाता, बहुतै कस मानुस घट राता ।
कहेसि दुख मानस कर बासा, जहाँ दुख तहाँ मोर निवासा ।

एक जोति रूप पुनि एकै, एक प्राण एक देह ।
आपुहि आप जोरि कोइ चाहै, याकर कौन संदेह ।[2]

---

१. मधुमालती, पृ० ३६ । २. वही, पृ० ३७ ।

इसी प्रकार शेख मझन ने विरह के सम्बन्ध मे भी कहा है और उसे भी उन्होने नित्य जैसा ठहराया है। उनका कहना है—

कहहू पै मोहि कहा न जाइहि, विरह कथा का कहत सिराइहि।
उतपत विरह मैं सबै कहाहीं, अंत विरह चारिहु जुग मांही।[1]

शेख मझन ने इस प्रेम के कारण उत्पन्न विवशता का भी वर्णन किया है और बतलाया है—

प्रेम वियोग न सहि सकौं, मरौं तौ मरे न जाइ।
दुइ दूभर मो हौं परौं, दगधि न हिये बुताइ।[2]

'चित्रावली' के रचयिता शेख उसमान ने प्रेममार्ग की विकटता का वर्णन करते हुए जोगी द्वारा इस प्रकार कहलाया है—

कहेसि कुंअर यह पंथ दुहेला, अस जनि जानु हंसी औ खेला।

× × ×

जाइ सोइ जो जिउ पर तेजा, सार पांसुली लोह करेजा।
तैं अबही घट आपन बूझा, वार देखि पिछवार न सूझा।[3]

अर्थात् अजी राजकुमार, यह प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन है, यह हँसी खेल का विषय नही है। इस पर वही अग्रसर हो सकता है जिसकी पसलियाँ लोहे की बनी हैं और जिसका कलेजा भी लोहे के ही समान कठोर है। तुझे तो अभी तक अपने शरीर का ही ठीक पता नही है, तुझे केवल इसका द्वार मात्र ही दीख पडता है, इसका पिछवाडा भी नही सूझ पडता अर्थात् तू केवल इसमे प्रवेश करने मात्र की ही क्षमता रखता है, तुझे यह पता नही कि इससे अत तक बच निकल सकोगे भी या नही। इस कवि ने इसी प्रसग मे, यहाँ पर प्रेममार्ग मे पड़ने वाले बीच के चार नगरो का भी वर्णन कर दिया है और उनके परिचय के माध्यम द्वारा यह सूचित कर दिया है कि प्रेमसाधना मे निरत साधको को किन दशाओ से गुजरना पडता है। उसमान का कहना है कि यह प्रेम का मार्ग उन चार नगरो से हो कर जाता है जिनमे से चारो मे दुर्ग भी बने हुए है जिनके पीछे कुछ

---

१. वही, पृ०   २. वही, पृ०।   ३. चित्रावली, पृ० ७९।

टमार' छिपे रहा करते हैं और ऐसे यात्री को बीच मे ही मार दिया करते है।
। चारो मे से प्रथम नगर का नाम 'भोगपुर' जहाँ पर भोगविलास की सारी
मग्रियाँ मिल सकती है। इसलिए वहाँ पहुँचते ही उस यात्री को प्राय. उलझ
ना पड़ता है और वहाँ पर केवल वही सँभल पाता है जो वहाँ के सारे प्रपचो
अवगत रह कर अपने को निभा ले जाता है। फिर इसके आगे 'गोरखपुर'
। नगर आता है, जहाँ पर सर्वत्र योगसाधना का ही प्रभाव दीख पड़ता है और
हाँ से अपने को वही यात्री बचा पाता है जो वहाँ के निवासियो का विशिष्ट
ोप' अपना ले। उसे फिर आगे 'नेह नगर' मिलता है, जहाँ पर पहुँच कर कोई
ाजा भी भिखारी की दशा मे आ जाता है और वहाँ से वही निबुक पाता है
ो अपना सर्वस्व लुटा देता है। ऐसा कर लेने पर ही वह कही इस योग्य हो
ाता है कि वह आगे के 'रूपनगर' तक पहुँच सके। यह नगर अत्यन्त ऊँचा और
यानक है और इसके भीतर करोड़ो मे से कोई एकाध ही प्रवेश कर पाते
। तू अभी तक दुखिया रहा, तू कैसे क्या कर सकेगा।[1] उसमान कवि के ये
गर वास्तव में काल्पनिक है और ठीक इनके अनुसार बतलाये गए विश्राम-स्थलो
ा कही अन्यत्र पता भी नही चलता। परतु यहाँ पर इतना अवश्य उल्लेखनीय
ै कि इस प्रकार चित्रण कर के इस कवि ने हमे प्रेममार्ग की विशेषताओ का
ुन्दर परिचय करा दिया है और इस पर आगे बढने वाले साधक की विभिन्न
दशाओ के क्रमिक विकास की ओर भी सकेत कर दिया है।

शेख उसमान के परवर्ती शेख नबी की रचना 'ज्ञान दीपक' मे हमे किसी इस प्रकार के वर्णन का पता नही चलता है। इस कवि ने प्रेमरस की मादकता और तज्जन्य मस्ती की ओर विशेष ध्यान दिया है और उसे इस कारण ही, अधिक विषम ठहराना चाहा है। इसके विपरीत कासिम शाह कवि ने अपनी रचना 'हस-जवाहर' के अतर्गत, फिर इस प्रेममार्ग का ही वर्णन किया है और ऐसा करते समय, उसने इसकी दुर्गमता का चित्र लगभग उसी प्रकार खीचा है जैसा पहले से होता आ रहा था। यहाँ पर 'हस' को 'शब्द' के द्वारा मार्ग का

१. चित्रावली, पृ० ८०-३

परिचय कराया जाता है और चीन की ओर जाने वाले का दाहिनी दिशा में होना वतलाया जाता है जिससे होकर भी जाते समय, 'सात सुमेर' और 'समँद अवगाहा' मिलते है तथा सर्वत्र दुख ही दुख मिला करता है। 'हस' को आगे इसी के अनुसार, अनुभव भी होता है और वह कठिनाइयो के पड़ जाने पर अपना दैन्य प्रकाशित करता है ?[१] कासिम शाह ने अपने ढंग से यहाँ पर प्राय उन सारी वातो का विस्तृत उल्लेख ला दिया है जिनका 'चित्रावली' के अतर्गत समावेश किया गया है, किंतु इन्होने इसका वर्णन उतना स्पष्ट नही किया है। इनका वर्णन जितना सिद्धान्त के परिचय जैसा नही, उतना प्रेमी 'हंस' द्वारा अनुभूत कष्टादि के विवरणो के रूप मे है। अतएव, जान पड़ता है कि यह कवि यहाँ पर किसी सावना-पद्धति की ओर भी इगित न करता हुआ केवल कथा के नायक की कठिनाइयो का ही प्रसग ला देना चाहता है।

'इन्द्रावती' के रचयिता नूर मोहम्मद कवि ने भी अपनी इस रचना के नायक राज कुँवर को प्रेममार्ग द्वारा आगे वढाते समय उसके सामने विभिन्न प्रसगो का अवतरण किया है और उनके माध्यम से सात विघ्नो की चर्चा भी कर दी है। इस कवि के अनुसार, ये विघ्न सात विभिन्न वीहड वर्गो के रूप में आते है और ये अपनी-अपनी विशेषताएँ भी प्रदर्शित करते है। राजकुँवर यहाँ पर अपने आठ साथियो को ले कर 'आगमपुर' की ओर आगे वढता है और ऐसा करते समय उसे क्रमश इस प्रकार का अनुभव होता चलता है मानो उसकी कोई न कोई इन्द्रिय किसी स्थल पर विशेप रूप से आकृष्ट हो रही है। वह क्रमश रूप, रस, गध, आदि की उत्कृष्टता के कारण उनके भोग मे लिप्त होते-होते अपने को किसी प्रकार वचा पाता है। उसे अपने मार्ग मे कई ऐसे व्यक्तियो से भी भेंट हो जाती है जिनके कारण उसे कही पर ठहर जाने और इस प्रकार अपना वहु-मूल्य समय खो डालने की आशका उत्पन्न हो जाती है, किंतु वह सँभल कर फिर आगे वढ जाता है। इस कवि ने अपनी रचना के अतर्गत, प्रलोभनो तथा कष्टो का चित्रण वडी प्रचुर मात्रा मे किया है। ऐसा करते समय, इसने कई ऐसे नामों

१. हंस जवाहर (लखनऊ, १९५२ ई०) पृ० १३९-६३।

का भी प्रयोग कर दिया है जिससे वर्ण्य विपय को समझने मे अच्छी सहायता मिल जाती है। नूर मोहम्मद ने 'इन्द्रावती' के अतर्गत, एक 'जिव-कहानी' का भी प्रसग ला दिया है जो स्वय अपने मे पूर्ण कही जा सकती है और जिसका रहस्य जान लेने पर हमें कवि के अतिम लक्ष्य का परिचय पाने की सुविवा मिल जाती है। वास्तव मे नूर मोहम्मद की यह रचना वहुत कुछ गभीर एव पाडित्यपूर्ण भी कही जा सकती है। इस कवि ने अपनी एक दूसरी रचना 'अनुराग-वाँसुरी' में भी विविव प्रतीको का उपयोग किया है और जैसा इसके पहले भी कहा जा चुका है, इसने वहाँ पर भी उक्त रचना-पद्धति का ही अनुसरण किया है जिसे मुल्ला वज़ही ने अपनी 'सवरस' मे अपनाया था।

नूर मोहम्मद ने जिन सात वीहड़ वनों की चर्चा प्रतीको के रूप मे की है वे उन सप्त सोपानो से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते है जिनका वर्णन सूफियो के ग्रथो में सावारणत किया गया मिलता है और जिनका उल्लेख हम उनकी साव-नाओ का परिचय देते समय भी कर आए है। वे सप्त सोपान, क्रमग. 'अनुताप', 'आत्म-सयम', 'वैराग्य', 'दारिद्र्य', 'वैर्य', 'आस्था' और 'सतोप' के रूपो मे पाये जाते है जिनसे स्पप्ट है कि वे किसी सावक की मनोदशा अथवा उसकी आतरिक स्थिति को ही सूचित करते है। परतु इन वीहड़ वनों के वर्णन से पता चलता है कि ये वस्तुत. वाहरी वावाओ के रूपो में आए है और इनका कार्य उसके मार्ग में व्याघात पहुँचाना मात्र है। ये सात ही क्यो हो सकते हैं इसका कोई कारण नही वतलाया गया है, कितु हमे ऐसा लगता है कि यह (सात की) सख्या हमारे उन सात प्रमुख सावनो की ओर भी सकेत करती है जिनका प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन-व्यापार में किया करते है। इन सात विघ्न वावाओं का प्रसंग आने पर हमारा ध्यान स्वभावत. उन सात घाटियो की ओर भी चला जाता है जिनकी चर्चा सूफी कवि अत्तार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मन्तिकुत्तैर' मे की है और जिन्हे उसने उसके पक्षी यात्रियो के मार्ग मे आ पड़ने वाले विघ्न निर्वारित किये हैं। उस रचना के अनुसार सभी पक्षी एकत्र हो कर अपने राजा के नेतृत्व में, रहस्यपूर्ण 'सीमुर्ग' को ढूंढने निकल पड़ते हैं और उन्हे अपनी उस यात्रा में आगे वढते समय सात घाटियो को पार करना पडता है जिनके नाम क्रमशः

प्रेम, सूक्ष्मज्ञान, अनासक्ति, एकता, विस्मय तथा निर्वाण जैसे अर्थों वाले शब्दों के दिये गए है और जिनके कारण, उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचते-पहुँचते, उन यात्रियो मे से केवल तीस ही रह जाते हैं । यहॉ पर यह भी उल्लेखनीय है कि ये तीस पक्षी यात्री अत मे, वस्तुत. स्वय वह 'सीमुर्ग'' (सी=तीस+मुर्ग=पक्षी) सिद्ध होते है जिसे वे ढूँढने निकले थे । सूफी कवि अत्तार ने इस काल्पनिक कहानी के द्वारा सूफी साधना का ही वर्णन किया था, किंतु यहाँ पर भी हमे 'इन्द्रावती' वाले राजकुँवर की प्रेम-यात्रा के साथ कोई प्रत्यक्ष साम्य नही दीख पडता, प्रत्युत ये घाटियाँ अधिकतर उक्त सप्त सोपानो से ही मिलती हैं ।

इस प्रकार सूफी प्रेमगाथाओ के अतर्गत किये गए विघ्न-बाधाओ के वर्णन या तो किसी पूर्व परपरागत सिद्धान्त के अनसरण मे तथा उसकी बातो को ध्यान मे रखते हुए अथवा उसमे निहित भावनाओ के स्पष्टीकरण मे केन्द्रित रहा करते है और उनके लिए यह आवश्यक नही कि वे घटनाओ की वास्तविकता की भी रक्षा करे । इस कारण, प्राय देखा जाता है कि उनके वैसे चित्रो मे अतिरजन और अतिशयोक्ति की मात्रा बढ जाया करती है और वे कभी-कभी अस्वाभाविक तक भी लगने लगते है । इस प्रकार की अस्वाभाविकता उन काल्पनिक गाथाओं के लिए दोप-सूचक चाहे न भी सिद्ध की जा सके जिनकी रचना का लक्ष्य अधिकतर मनोरजन ही रहा करता है, किंतु जिन ऐसी कहानियो के लिए कोई ऐतिहासिक कथानक भी चुना गया हो, उनके सम्बध मे तो कदाचित् यहाँ तक भी कह देना अनुचित नही कि यह सर्वथा अक्षम्य है । उदाहरण के लिए जायसी का अपनी 'पद्मावत' के नायक राजा रतनसेन द्वारा ऐसे किसी सिंहलद्वीप की विकट यात्रा कराना जिसका कोई भौगोलिक अस्तित्व ही नही ठहराया जा सकता था, जहाँ तक उसके जाने के पहले विभिन्न कृत्रिम विघ्नो की सृष्टि करनी पडती है, किसी ऐतिहासिक नायक के सम्बध मे कपोल कल्पित बातो का प्रसग छेड देना ही कहा जा सकता है । राजा रतनसेन का किसी सूए के द्वारा पद्मिनी के अनुपम सौन्दर्य की प्रशसा सुनकर तुरत मूर्छित हो पडना तथा उसके लिए सहस्रो साथियों के साथ 'जोगी' बनकर निकल पडना भी ठीक वैसी ही बाते है जो किसी ऐसे ऐतिहासिक नायक के विषय मे नितान्त अनुपयुक्त ही ठहरायी जा सकती है तथा

जिनका समाधान केवल प्रचलित कथा-रूढियों के ही आधार पर किया जा सकता है। जहाँ तक असूफ़ी प्रेमगाथाओ का प्रश्न है हमे वहाँ पर इस प्रकार की वातें बहुत कम दीख पडती है। बावा धरणीदास की प्रेमगाथा 'प्रेम प्रगास' का नायक भी अपनी प्रेयसी के लिए 'जोगी' बन कर निकलता है, किंतु वह कोई ऐतिहासिक पुरुष नही है। इसी प्रकार, यदि 'छिताई वार्ता' के 'सौरसी' को हम 'ऐतिहासिक' पुरुष मानते है तो वहाँ पर हम उसे उसके 'जोगी' बन जाने पर भी, उस दशा तक पहुँच जाते हुए नही पाते, जहाँ तक जायसी ने राजा रतन सेन को घसीट कर ला दिया है। इसके सिवाय 'छिताई वार्ता' के प्रेमी 'सौरसी' का 'जोगी' बन जाना हमे उतना अस्वाभाविक भी नही प्रतीत होता है। छिताई उसकी पूर्व-परिचिता प्रेमपात्री तथा पत्नी तक भी रहा करती है जिससे वियुक्त होकर वह अधीर और उन्मत्त तक बन जा सकता है। छिताई एव सौरसी का प्रेम-सम्बध विशुद्ध भारतीय दाम्पत्य प्रेम के आदर्श पर सघटित है और उसे हम पूर्वानुभूत एव स्वभावत दृढ भी ठहरा सकते हैं, जहाँ पद्मावती एव राजा रतनसेन के बीच हम किसी ऐसी बात का कोई पता तक भी नही पाते। इसके लिए किया गया 'पूर्व जन्म' सम्बधी अनुमान का सूत्र, उसके समक्ष अत्यन्त क्षीण और अविश्वसनीय भी प्रतीत होता है।

(१०)

सूफी तथा असूफी प्रेमगाथाओ का तुलनात्मक अध्ययन करने लगने पर हमे कुछ मनोरजक परिणाम देखने को मिलते है। अनेक बाते ऐसी है जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि इन दोनो वर्गों की रचनाओ मे कोई उल्लेखनीय अतर नही है। उत्तरी भारत के सूफी कवि अपने पूर्ववर्ती अथवा कादाचित् समसामयिक असूफ़ी प्रेमगाथा-रचयिताओ की ही भाँति अपने कथानको को अधिकतर पूर्व प्रचलित प्रेमकहानियो से ही चुनते है अथवा कभी-कभी उनका आरभ करते समय किसी पौराणिक इतिवृत्त वा प्रसग का हवाला दे देते हैं। उनका प्रयास इस प्रकार, किसी प्राचीन कथा के सूत्र रूप को अधिक विकसित अथवा पल्लवित रूप देने का ही रहा करता है। मुल्ला दाऊद के 'चदायन' की रचना के प्रथम किसी

मलिक नाथन के साथ उसके मूलकथानक विपयक वातचीत करता जान पडता है। शेख कुतवन अपनी 'मृगावती' की कथावस्तु का पहले से किसी न किसी रूप मे वर्त्तमान रहना प्रकट करता है तथा इसी प्रकार शेख मझन भी 'मधु-मालती" की कथा का द्वापर युग तक से चली आई हुई ही वतलाता है। कासिम शाह का भी यही कहना है कि जो कथा मै कहने जा रहा हूँ वह इस जग मे वखानी वा कही जा चुकी है। यदि कोई सूफी कवि ऐसा नही कहता वह तो भी कम से कम इतना वतला देता है कि उसकी कहानी यशोलिप्सा आदि के कारण लिखी जा रही है। असूफी कवि दामो की 'लखमसेन पद्मावती'[1] का कथानक भी पूर्व परिचित सा ही है और उसे कीर्ति की आशा से कहा जा रहा है। ईश्वर-दास तो 'सत्यवती कथा' का आरभ ही 'जनमेजय' तथा 'व्यास रिखिय' के द्वारा करता हुआ जान पडता है। दोनो प्रकार की प्रेमगाथाओ की रचना इस प्रकार किसी न किसी व्याज से ही होती है और उसकी सफलता के लिए परमेश्वर वा देवताओ की वदना की जाती है। इस वदना वाले अंग मे सूफी कवि अपना, अपने पीर वा पैगवर आदि का तथा शाहेवक्त का न्यूनाधिक परिचय भी दे दिया करता है, जहाँ पर असूफी कवियो को भी ऐसा यत्न करते हुए हम नही पाते। परतु इस प्रकार की कुछ न कुछ वाते वे भी कभी-कभी कह जाते हैं। वदना-परक पक्तियो मे सूफी कवि जहाँ अपने को अधिकतर प्रशसात्मक वाक्यो के प्रयोगो तक ही सीमित रख देना चाहते है, वहाँ असूफी कवि अपने आराध्य देवताओ से अपनी कृति की सफलता के लिए वरदान की याचना तक करने लगते है। अतएव, प्रारभिक वातो के सम्वध मे कहा जा सकता है कि उक्त दोनो प्रकार की रचनाओ मे, वर्ण्य विपय की समानता के रहते हुए भी उनके रचयिताओ की मनोवृत्ति विशेप के कारण वहुत कुछ अतर आ गया दीख पडता है।

इस प्रकार की कुछ उल्लेखनीय वाते हमें ऐसी रचनाओ के अतर्गत कथा-सगठन, घटना-प्रवाहादि मे भी देखने को मिलती हैं। सूफी कवि अपनी प्रेमगाथा

---

१. सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी : लखमसेन पद्मावती, परिमल प्रकाशन, प्रयाग।

का निर्माण किसी उद्देश्य विशेष द्वारा प्रेरित होकर करने जा रहा है। वह अपने सूफीमत द्वारा अनुमोदित प्रेमसाधना के स्पष्टीकरण के लिए यत्नशील है। वह उसके महत्व एव स्वरूप दोनो को यथासभव सफलता के साथ उपस्थित कर उसके द्वारा न केवल दूसरों को परिचित कराना, अपितु उन्हे प्रभावित भी कर देना चाहता है। इस कारण उसे प्रेमतत्व के प्रारभिक रूप उसके क्रमिक विकास, परिणति एव रहस्य सभी को चित्रित करना पड़ता है। वह इसके लिए अपनी कथा को आरभ से ही एक ऐसा रूप देकर आगे बढाना चाहता है जिसमे ये सभी बातें भली भाँति खप जा सके तथा उसके प्रवाह मे वह ऐसे विशिष्ट मोड भी लाती चले जिससे अपने उद्देश्य की सिद्धि मे उसे पूरी सहायता मिल सके। प्राय. सभी सूफ़ी प्रेमगाथाओ का आरभ पूर्वराग से होता है उसे वियोगजन्य उत्कट भावो के सहारे पुष्ट एव परिवर्द्धित किया जाता है तथा दृढव्रत प्रेमियों के अनवरत यत्नो द्वारा उसे प्रतिफलित भी करा देने की योजना रखी जाती है। परतु; अंत मे जब नायक एव नायिका मिलकर विवाह के बधन मे बँध गए दीखते है तो कथा को दुखान्त भी कर दिया जाता है। इसके विपरीत असूफी कवि का उद्देश्य ऐसी किसी साधना विशेष के ऊपर केन्द्रित न होकर अपेक्षाकृत अधिक व्यापक रहा करता है। वह पूर्वानुराग तथा उसके अपूर्व प्रभाव, प्रेमभाव के क्रमिक विकास और उसके दृढीकरण अथवा उसके विरह पक्ष एव अतिम परिणति आदि विभिन्न पक्षो के ऊपर पृथक्-पृथक् विशेष ध्यान देना अनिवार्य नहीं मानता। वह उनका वर्णन, केवल प्रासगिक रूपो मे ही पूरा करके आगे बढता जाता है और वैवाहिक बधन द्वारा प्रेमी एवं प्रेमिकाओ के एक दूसरे के साथ बँध जाने पर वह उनके उस सम्बध की मर्यादा को भी महत्व देने लग जाता है जो सूफी कवि के क्षेत्र का विषय नही है। प्रेमकहानी को दु खान्त मे परिणत कर देने के कारण इस कवि का मार्ग आगे के लिए अवरुद्ध सा हो जाया करता है और इसके लिए ऐसा अवसर बहुत कम उपलब्ध हो पाता है, जब यह उस ओर अपना ध्यान तक भी ले जा सके। इसका कर्त्तव्य दोनो को एक दूसरे के समक्ष ला देना और या तो उन्हे विवाह द्वारा पति-पत्नी के रूपो तक प्रदर्शित भी कर देना अथवा अंत मे, मृत्यु द्वारा सदा के लिए एक दूसरे को वियुक्त कर

देना मात्र ही रहा करता है जिससे इसका अपना ऊपर कथित उद्देश्य भी पूरा हो जाता जान पड़ता है। परन्तु असूफी कवि को इतने मे ही सतोष नहीं हो पाता और उसे प्रेमबंधन के महत्व को भी उदाहृत करना आवश्यक प्रतीत होता है जो न केवल पति एवं पत्नी इन दोनों के जीवित बने रहने की दशा मे, अपितु उसके अनुसार वैधव्य की स्थिति आ जाने पर भी एक समान अक्षुण्ण बना रह सकता है तथा जिसे इस स्थायित्व के ही कारण, 'सत' की सज्ञा तक भी दी जाती है।

इस उपर्युक्त मतभेद का एक बहुत बड़ा परिणाम दोनों वर्गों के कवियों द्वारा प्रस्तुत किये गए कथानक-सघटन में भी दीख पड़ता है। सूफी कवि की प्रेमगाथाओं मे प्रेम का अकुर अधिकतर उनके नायकों के ही हृदय मे फूटता है और वह इसी प्रकार उस स्थल मे ही वैसे ढग मे पल्लवित एवं पुष्पित भी होता चला जाता है जो सूफीमत के अनुकूल है। नायिका के हृदय में उदय लेकर भी वहाँ वह प्राय. उस आदर्श तक नहीं पहुँच पाता जो सूफियों के अनुसार इश्क हकीकी वा दैवी प्रेम कहा जा सकता है। प्रेमिका यहाँ पर वस्तुतः 'प्रेमपात्री' ही कही जा सकती है जिसके प्रेम का रूप बहुत कुछ प्रतिक्रिया जन्य हुआ करता है तथा जो कभी स्वतन्त्र कहे जाने पर भी अपनी परिस्थितियों के कारण, उस कोटि तक नहीं पहुँच पाता जो उसके लिए यत्नशील नायक में दीख पड़ता है। परन्तु असूफी कवियों के प्रेमाख्यानों मे प्रेम का आदर्श रूप उनकी नायिकाओं के हृदय क्षेत्र मे निर्मित किया जाता है। इस कारण, यद्यपि इसका प्रभाव नायकों के हृदयों पर भी कम लक्षित नहीं होता, वह यहाँ पर वह आदर्श रूप नहीं ग्रहण कर पाता जिसको प्रदर्शित करना इन कवियों का अभीष्ट रहा करता है जिनके लिए नारी हृदय का क्षेत्र ही अधिक अनुकूल भी प्रतीत होता है। असूफी कवि दाम्पत्य जीवन के परिवेश मे काम करना चाहता है जिसके बने रहते उसे स्वभावत उस पत्नी की ओर ही विशेष ध्यान देना पड़ जाता है जो अपने पति को अपने 'जीवन-धन' अथवा 'सर्वस्व' तक के रूप में देखा करती है और जिसके लिए उससे इसी कारण, क्षणमात्र के लिए भी वियुक्त होकर जीना अत्यन्त कठिन हुआ करता है। ऐसे कवि उसे अपने पातिव्रत धर्म

का आदर्श प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करते है और उसके सामने विभिन्न प्रलोभनो का जाल विछा कर उनसे वचने तथा इस प्रकार अपनी परीक्षा मे खरा उतरने के मार्मिक चित्र भी खीचा करते है । वास्तव मे प्रेमसावना का उपक्रम यहाँ तक समाप्त हो गया रहता है और उस प्रेम-परीक्षा की अवस्था भी बीत चुकी रहती है जो कभी-कभी प्रेमभाव के क्रमिक विकास मे हो जाया करती है तथा जिसके उदाहरण हमे प्राय. सूफी प्रेमगाथाओ वाले प्रेमी नायको के यात्रा-विवरणो में मिल जाते हैं । यहाँ पर हमें वह 'सत' वा मर्यादा पालन की परीक्षा देखने को मिलती है जिसे अपनी प्रेमकहानी मे स्थान देना किसी प्रेमसावक सूफी के लिए कभी आवश्यक नही हुआ करता, न जो कभी उसकी रचना का लक्ष्य ही हुआ करता है । इसे तो केवल अपनी आदर्श प्रेमसाधना को उदाहृत एवं विवृत करना रहता है जो नायक एव नायिका की मिलन-दशा तक पूरा हो जाता है । इसके लिए किसी दाम्पत्य प्रेम के आदर्श का चित्रण करना भी अनिवार्य नही जिसे असूफी कवि प्राय अपना कर्त्तव्य तक समझ लेता है । फलत सूफी कवि जहाँ किसी पुरुष की ओर से किसी प्रेमपात्री के लिए एक सावक जैसा यत्न कराया करता है, वहाँ असूफी किसी पत्नी की ओर से उसके पति के लिए वियोगार्त्त दशा का व्यवहार कराता है जिसका सम्वध किसी आध्यात्मिक लक्ष्य से भी नही रहा करता ।

इन दोनो वर्गो के कवियो की मनोवृत्ति का अतर एक अन्य दिशा मे भी लक्षित होता है । एक सूफी कवि के लिए यह आवश्यक नही होता कि वह किसी प्रेमी नायक को अपनी चेष्टाओ में सदा सफल ही वना दिया करे । उसे तो केवल अपनी आदर्श प्रेमसावना का स्वरूप एव गुरुत्व निर्दिष्ट करना रहता है जो उसे उसकी चरम परिणति तक पहुँचा देने मात्र से भी सिद्ध हो जा सकता है तथा जो मिलन दशा के स्थायी न वन सकने पर भी कभी निष्फल होता नही जान पडता । एक सूफी का उद्देश्य साधारणत: अपने इष्ट परमेश्वर के साथ एकत्व की दशा में आ जाने तथा उसका स्वरूप गहण करने अथवा उसके प्रति पूर्ण तादात्म्य के भाव का अनुभव करने का नही हुआ करता । वह अपनी उपर्युक्त सावना की परिणति के फलस्वरूप अपनी 'उवूदियत' वा मानवीय गुणो का परि-

त्याग कर फल की दशा तक पहुँच जाता है। फिर 'इलाहियत' वा ईश्वरीय गुणो को अपनाने वाली 'वक़ा' की स्थिति तक भी अपनाता है जिसमे उसे अपने समस्त कार्यो को परमेश्वर द्वारा अनुमोदित मान लेने की प्रवृत्ति का वोध होने लगता है। इसके द्वारा वस्तुत. उसकी 'अहता' का नाश हो जाता है और वह अपने को परमेश्वर मे लीन तक कर देने की स्थिति मे आ जाता है। परतु ऐसी किसी भी दशा मे, वह अपने को कभी स्वय उस इप्ट की स्थिति की पूर्ण दशा तक प्राप्त हुआ नही अनुभव करता। उसे उसका समकक्ष वन कर शाश्वत रूप अपना लेने का कदाचित्, कभी साहस नही होता, न इसी कारण वह कभी उसके साथ पूर्ण अभेद भाव की दशा मे आ ही पाता है अथवा दाम्पत्य भाव के उस चरम आदर्श तक ही पहुँच पाता है, जहाँ पति एव पत्नी एक ही वस्तु के दो पहलू मात्र से लगा करते हैं। इस दशा के अनुसार जिस प्रकार शिव के विना शक्ति का अँस्तित्व नही उसी प्रकार विना शक्ति शिव की भी सभावना नही की जा सकती। दोनो तत्वत एक और अभिन्न है और उनके पार्थक्य की कभी कोई कल्पना तक भी नही की जा सकती। फलत इस दृष्टि के अनुसार सयोग के महत्व को कभी उपेक्षित नही किया जा सकता, न वियोग को सभी कुछ समझते हुए उसे प्रेमतत्व का सार तक ठहरा दिया जा सकता है, जैसा सूफी कवियो ने अपनी प्रेमगाथाओ द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा की है। असूफी कवि भी विरह की दशा का वर्णन करता है तथा अधिकतर उसके ही सहारे वह किसी प्रेमी वा प्रेमिका के प्रेमगाभीर्य का पता भी दिया करता है। परतु वह इसे सूफ़ी कवियों की भाँति, कभी प्रेमतत्व का सर्वस्व तक मान लेता हुआ नही दीख पडता, न वह इसके सामने सयोग का वर्णन करना अनावश्यक ही समझता है। मिलन वा सयोगावस्था को वह केवल एक आदर्श मात्र के रूप मे ही निर्दिष्ट कर उसे जहाँ का तहाँ छोड देना नही चाहता, प्रत्युत वह कभी-कभी उसका जमकर भी वर्णन करने लग जाता है। इस प्रकार उसका एक स्थूल चित्र तक उपस्थित कर दिया करता है जैसा सूफी कवि नही कर पाते। सूफी कवि का जी अधिकतर विरह के विस्तृत वर्णन मे ही रमा करता है और वह इसकी तीव्रता को प्रायः उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया करता है। वास्तव में, ये दोनो वर्गो के कवि

यहाँ पर उन अपने-अपने पूर्ववर्ती कवियो का भी अनुसरण करते है जिन्होने क्रमश संस्कृत एव फारसी मे रचना की है। असूफी हिंदी कवि के लिए सस्कृत कवियो का आदर्श उपस्थित रहता है जिसमे सयोग का वर्णन करते समय पूरे कामशास्त्रीय विवरण तक दिया जा सकता है, जहाँ वैसे सूफी कवियो के लिए उन फारसी कवियो का ही आदर्श रहा करता है जो उस दशा तक पहुँच कर बहुधा मौन धारण कर लिया करते है, किंतु जहाँ विरह का चित्र खीचना होता है, वहाँ कुछ भी उठा रखना नही चाहते।

उपर्युक्त विशेषताओ के कारण हम इन दोनो वर्गो के कवियो का चरित्र-चित्रण वा शीलनिरूपण के विषय मे भी दो भिन्न-भिन्न मार्ग ग्रहण करते हुए देखते है। सूफी कवियो का जहाँ इसके लिए नायक की ओर अधिक ध्यान देते हुए पाते हैं, वहाँ असूफी कवियो को नायिकाओं मे ही प्रेम एव विरहादि के आदर्श रूप को प्रदर्शित कर उनका सजीव वर्णन करते हुए देखते हैं। इसके सिवाय हमे सूफ़ी कवियो की रचनाओ मे कदाचित् उस वैविध्य का भी पता नही चलता जिसके उदाहरण, असूफी कवियो के यहाँ नायको के विभिन्न रूपो के अनुसार मिला करते है और जो वास्तव में उनकी प्रेमगाथाओ की विभिन्न रचना-शैलियो को भी सूचित करते हैं। सूफी कवि का प्रेमी नायक प्राय एक ही वर्ग का पुरुष हुआ करता है और वह लगभग एक ही प्रकार का प्रेम-व्यापार भी प्रदर्शित करता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँचता जान पडता है तथा उसे अधिकतर एक ही जैसी सिद्धि की उपलब्धियाँ भी हुआ करती है। परतु असूफी कवि के नायक के लिए ठीक ऐसा ही करना सदा आवश्यक नही हुआ करता। यदि वह किसी भक्त वा साधक का उदाहरण उपस्थित करना चाहता है तो वह भले ही उसका जैसा आचरण करले, किंतु जहाँ पर उसे दाम्पत्य प्रेम के केवल एक माध्यम के ही रूप मे आना पडता है, वहाँ पर उसके जीवन मे उन विशेपताओ का कोई महत्व नही रह जाता जो सूफी कवियो वाले नायको मे उनके प्रधानत उद्योगशील होने के कारण आ जाती है। दाम्पत्य परक प्रेम सम्बधी गाथाओ के अतर्गत नायक से अधिक नायिका ही कार्यशील बन जाती दीख पडती है। यदि ऐसी रचनाओ का लक्ष्य कही 'सत' की परीक्षा भी रहा करता है तो वहाँ पर उसके नायक

को उस पद तक पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता है जो सूफी कवियों वाली नायिकाओं का रहा करता है। वह इसी कारण, स्वभावत किसी नायिका के लिए उसका इष्ट तक भी बन जाता है ऐसी रचनाओं में कभी-कभी यहाँ तक भी देखा जाता है कि दाम्पत्य भाव वाली नायिका एक ओर अपने यहा विरह में झूरती और बेचैन होती दीख पड़ती है। दूसरी ओर उसका पति किसी अन्य सुन्दरी के प्रति आसक्त होकर उसे भूल तक भी जाया करता है। ऐसे नायकों का चरित्र-चित्रण सूफी कवियों ने भी किया है और उनका 'पद्मावत' के रतनसेन तथा 'चंदायन' के लोरक जैसा, क्रमशः नागमती एवं मैना जैसी अपनी पत्नियों के यहां अंत में, लौट आना भी प्रदर्शित किया है। परन्तु उनका प्रधान उद्देश्य केवल इतना ही रहा है कि उक्त दोनों रचनाओं की क्रमशः पद्मावती एवं चंदा जैसी नायिकाओं की प्राप्ति के लिए प्रेमी नायकों द्वारा यत्न कराया जाय तथा उनकी सफलता को ही उसकी सिद्धि मान ली जाय।

नायिकाओं का अवतरण दो प्रकार से किया गया मिलता है जिनमें से एक के अनुसार वैसे प्रेमी नायक की प्रथम पत्नी उसके लिए अधिक महत्व की नहीं पायी जाती और दूसरी को ही प्रधान नायिका का पद प्रदान किया जाता है, जहां दूसरे के प्रसग मे उसकी प्रथम प्रेमपात्री ही अंत तक उस स्थान के लिए उपयुक्त सिद्ध होती है और दूसरी वा तीसरी आदि भी उसके समक्ष गौण बन जाती है, किंतु ऐसी दशा मे उपर्युक्त सत-परीक्षा का अवसर प्रायः नही मिला करता। उक्त 'पद्मावत' एवं 'चंदायन' की प्रेमगाथाओं मे इनमे से पहले प्रकार की ही नायिकाओं का चित्रण किया गया है, जहाँ दूसरे प्रकार के उदाहरणों मे 'मृगावती' की मृगावती एवं रुक्मिनी तथा 'चित्रावली' की चित्रावली एवं कँवलावती के नाम लिये जा सकते है। इस सम्बन्ध मे यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि उक्त दूसरे प्रसग की गौण नायिका कँवलावती द्वारा अपने पति सुजान के विरह मे झूरने तथा उसके प्रति किसी हंससिश्र नामक दूत के हाथ अपना संदेश भेजने का भी उपक्रम कराया गया है। वास्तव मे, यहां पर यह नायिका, सुजान के लिए दूसरी प्रेमपात्री होने पर भी, चित्रावली से पहले ही उसकी पत्नी भी बन जाती है। इस प्रकार उसे उस पद की भी प्राप्ति हो गई समझी

जा सकती है जो उपर्युक्त नागमती एव मैना जैसी पत्नियो का ही है ।

असूफी कवि दुखहरन की 'पुहुपावती' के अतर्गत तो हमे यहाॅ तक दीख पडता है कि उसके नायक राजकुमार की तीन प्रेमपात्रियाॅ सामने आती है। यद्यपि उनमें से सर्वप्रधान पुहुपावती ही कही जा सकती है तथा इसके साथ उस नायक का 'अधर संयोग' भी हो गया रहता है, वह इससे वियुक्त हो भी जाता है। तदनन्तर उसका विवाह रूपावती से कर दिया जाता है और पुहुपावती उसके विरह मे बेचैन होकर अपना सदेश किसी मालिन द्वारा भेजती है जिस पर वह वैरागी बनकर निकल पडता है और उसका विवाह इस मार्ग मे ही किसी 'रगीली' से भी करा दिया जाता है। 'रगीली' उसका साथ, उसके द्वारा पुहुपावती की खोज करते समय भी, जोगिन बन कर देती है और जब वह अपनी प्रथम प्रेयसी को पुन प्राप्त कर लेता है तो रूपावती भी उसे अपना विरह-सदेश किसी उपकारी मैना द्वारा भेजती हुई दीख पडती है और अत मे, वह तीनो को साथ लेकर अपने घर वापस आता है। यहाँ पर रूपावती एव रगीली दो गौण नायिकाओ के रूप में आती है और इनके साथ राजकुमार नायक का विवाह भी हो जाता है, जहाँ प्रधान नायिका पुहुपावती के साथ उसका केवल 'अधर सयोग' तक ही हुआ करता है। इसके साथ उसका विधिवत् विवाह पीछे एक स्वयवर के आयोजन द्वारा कराया जाता है जिससे यह क्रमानुसार उसकी तीसरी पत्नी भी ठहरती है। इस प्रेमकहानी की एक यह विशेपता भी है कि यहाँ पर प्रधान नायिका पुहुपावती तथा एक गौण नायिका रूपावती जहाॅ अपने प्रियतम को केवल सदेश भेज कर ही रह जाती है, वहाॅ इसकी रगीली नाम की दूसरी गौण नायिका उसका साथ स्वय जोगिन बन कर देती है। यह उसे उसकी वैसी प्रेम-पात्री की खोज मे भी सहायता पहुँचाना चाहती है जो वस्तुत. इसकी सौत भी कही जा सकती है। इस रगीली नामक नायिका की एक यह भी विशेपता है कि यह मूलत किसी बेगमपुर के राजा बेगमराय की पुत्री रहा करती है। किंतु इसे कोई दानव उठा ले जाता है और इसके अनुरूप किसी वर को ढूंढते समय वह इसका विवाह पुहुपावती के लिए निकले राजकुमार से ही कर देता है। इसके सिवाय जब यह रगीली राजकुमार के साथ जोगिन के वेश मे जाते

समय उससे वियुक्त हो जाती है तो यह उसके लिए किसी तीर्थ में बैठकर ध्यान की साधना भी करने लग जाती है और यह उसी दशा में उपर्युक्त 'उपकारी' मैना को मिलती है।

इस प्रकार यदि इन तीनो नायिकाओ के सम्बध मे एक साथ विचार किया जाय तो इनमे से प्रथम अथवा प्रधान नायिका पुहुपावती को जहाँ हम सूफी कवियो की उल्लिखित चदा, मृगावती, पद्मावती एव चित्रावली का स्थान दे सकते है, वहाँ पर क्रमश उनकी मैना, रुकमिनी, नागमती एव कँवलावती के स्थान पर यहाँ की रूपावती एव रंगीली को रख सकते है। किंतु 'पुहुपावती' प्रेमगाथा के असूफी कवि ने उसकी प्रधान नायिका के साथ उसके नायक का 'अधर सयोग' कराकर उन दोनो के गाधर्व विवाह का भी उपक्रम करा देता है जिसका कारण, यद्यपि वह प्रकट रूप मे उसके द्वारा स्वयवर के अनन्तर वरण किया जाता है, यह वस्तुत. उसकी प्रथम पत्नी भी रहा करती है। अतएव इस रचना के अतर्गत उन तीनो ही नायिकाओ का नायक राजकुमार के साथ दाम्पत्य प्रेम ही चित्रित किया गया कहला सकता है। राजकुमार का प्रेम पुहुपावती के प्रति प्रत्यक्षत बहुत उत्कट है, किंतु उसके प्रति प्रदर्शित प्रेम की दृष्टि से ये तीनो एक समान कही जा सकती है। इन तीनो नायिकाओ के विषय मे तुलनात्मक अध्ययन करने पर कतिपय अन्य महत्व पूर्ण बातो का भी पता चलता है जिनका यहाँ उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा तथा जिनकी कुछ अधिक चर्चा मैंने अन्यत्र भी की है।[1] यहाँ पर सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि राजकुँवर नायक के लिए उस की पुहुपावती पत्नी ही सर्वाधिक प्रिय है, किंतु वह इसे एक साधु के माँगने पर समर्पित कर देता है जो कदाचित् उसके प्रेम मे भी कही अधिक त्याग के प्रति निष्ठावान होने के कारण है। यही बात सभवत इस प्रेमाख्यान के रचयिता का मत भी सिद्ध कर देती है तथा उसके सूफी कवियो से नितान्त भिन्न आदर्श को भी प्रमाणित करती है। एक सूफी

---

१. भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई०) पृ० १२३-४।

कवि के लिए यह कभी भी सभव नही कि वह अपने नायक की इष्ट स्वरूपिणी प्रेयसी पत्नी से उस क्षणमात्र के लिए भी वियुक्त करने की कल्पना करे। उसे किसी अन्य को दिला देने का तो वह कदाचित् कभी स्वप्न तक भी नही देख सकता। इसके लिए वह सदा परम सौन्दर्य वा ईश्वरीय ज्योति (नूरे इलाही) का प्रतीक रहा करती है जिस कारण उसे यह परमेश्वर का साक्षात् रूप समझा करता है। उसके रूप का वर्णन करते-करते आत्मविभोर बनकर वहुधा परमात्मा के अलौकिक गुणो की चर्चा तक करने लग जाता है तथा जव वह अपने प्रेमी नायक को प्राप्त होती जान पडती है तो इसे वह एक सूफी साधक की परम सिद्धि तक का महत्व दे देता है। उसकी इस विशेषता के ही कारण हम कभी-कभी इसके द्वारा उसका स्वाभाविक चित्रण होता भी नही देखा करते। वह सूफियों के यहाँ अपने प्रेम की उतनी प्रखरता नही दिखलाती जितना असूफियो के यहाँ करती दीख पडती है तथा फारसी के वैसे कवियो की रचनाओ मे तो वह कभी-कभी अपने प्रेमी के प्रति अनासक्त भाव तक प्रदर्शित कर देती प्रतीत होती है। इतना अवश्य है कि वह अपने प्रेमपात्र को पाने के लिए दोनो प्रकार की रचनाओ मे प्राय एक समान ही कोई विकट यत्न करती नही देखी जाती और इसके सभी उदाहरण हमें अधिकतर नायको की सकट पूर्ण चेष्टाओ मे ही मिला करते है। परतु यह वात कदाचित् इस कारण भी सभव है कि स्त्रियो में स्वभावत उतनी गतिशीलता नही देखी जाती, जहाँ पुरुष अपनी कार्यसिद्धि के लिए विघ्नो से लड़ते हुए भी पाये जाते है।

सूफी कवियो ने नायको एव नायिकाओ के अतिरिक्त अन्य अनेक पात्रो का भी चित्रण वहुधा अपने ढग से ही किया है। उन्होने प्रतिनायको की सृष्टि करने की वहुत कम चेष्टा की है, प्रत्युत उनसे अधिक खलपात्रो की ही ओर ध्यान दिया है। ये खलपात्र कभी राक्षसों जैसे पौराणिक प्राणियो के रूप मे अथवा कभी राघव चेतन जैसे दुष्टशील व्यक्तियो के वेश मे हमारे सामने आते है। प्रेमी नायको के मार्ग मे वाधा पहुँचाने अथवा उनका शान्ति भग करने की चेष्टा करते है और इसके कारण, हमें कुछ समय के लिए उनके कुशल-क्षेम के सम्बन्ध मे सशंकित भी कर दिया करते है। इनके साथ हमारी सहानुभति कभी नही हो पाती।

फिर भी इनकी अवतारणा का अपना एक पृथक् महत्व रहा करता है जो प्रेम-काथाओ के अतर्गत समस्याओ की सृप्टिकर उनके निराकरण द्वारा हमारे हृदयो मे एक विचित्र प्रकार के विजयोल्लास को प्रोत्साहन देने मे भी देखा जा सकता है । इसी प्रकार सदेशवाहको तथा मार्गदर्शको की सृप्टि द्वारा इन कवियो ने प्रेमकहानी की घटनाओ मे प्रगति एव प्रवाह लाने का काम लिया है । प्रेमगाथाओ के ऐसे विविध पात्रो की अधिक सख्या हमें कभी-कभी उद्विग्न कर देती है और हमारा जी उस समय ऊबने तक लग जाता है, जब हम देखते है कि प्रेमी नायको के मार्ग मे अनेक अजगर, पक्षी, हाथी वा प्राकृतिक बाधाओ तक का सृजन केवल उन्हे सकटापन्न करने के लिए ही किया जा रहा है और उनकी हमे यो कोई प्रत्यक्ष आवश्यकता नही जान पडती । इनके एक ही समान अन्य अनेक प्रेमकहानियो मे भी पाये जाने के कारण, हममे इन्हे बराबर अस्वाभाविक मान लेने की प्रवृत्ति भी हो जाया करती है जो रचना-कौशल की गुण-दोष परीक्षा की दृप्टि से कभी अनुचित भी नही कहा जा सकता । परतु जब हमे इस बात का भी स्मरण हो आता है कि ऐसा केवल कथारूढियो के विचार से ही किया गया होगा और इनका वैसा वास्तविक महत्व नही तो हमे इसका कुछ न कुछ समाधान मिल जाता है और हम इमे केवल एक पूर्वप्रचलित परपरा का परिणाम ही मान कर सन्तोष कर लिया करते है ।

(११)

उत्तरी भारत की हिंदी वाली सूफी प्रेमगाथाओ की कतिपय अपनी विशेषताएँ है जिनकी ओर सकेत करने का कुछ न कुछ प्रयास किया गया है । ये विशेषताएँ न केवल उनके अतर्गत प्रतिपाद्य प्रेम के स्वरूप तथा उनकी प्रेमकहानी के सघटन, घटनाप्रवाह एव परिणति मे ही पायी जाती है, अपितु ये उनके बाह्य रूप एव रचना-शैली के सम्बन्ध मे भी दीख पडती है और इनका एक अपना महत्त्व भी हो सकता है । हिंदी साहित्य के इतिहासकारो की अभी तक धारणा रही है कि इनके रचयिताओ ने फारसी की किसी 'मसनवी पद्धति' का अनुकरण मात्र किया है जिसका उद्देश्य प्रेमकथाओ का वर्णन करना ही रहा करता है और

यह सभवत. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के किसी कथन केआधार पर बन गई थी। मसनवी की रचना-शैली वास्तव मे, फारसी साहित्य की एक अपनी विशेषता है, किंतु इसमें भीसन्देह नही कि वह कोई एक ऐसी अपूर्व एव अनुपम कथन-प्रणाली का उदाहरण नही उपस्थित करती जिसके समान कोई अन्य वैसी पद्धति कही उपलब्ध नही थी। कथा-साहित्य का प्रणयन यहाँ भारतवर्ष मे बहुत प्राचीन काल से ही होता आया था। वह या तो सस्कृत वाले अनुष्टुप छदो के माध्यम से किया जाता था अथवा उसके लिए पालि वा प्राकृत की गाथाओ वा अपभ्र श के दूहो से काम लिया जाता था इसके सिवाय कभी-कभी, बीच-बीच मे, पद्य के साथ गद्य का भी प्रयोग कर दिया जाता था जिसके कारण कथन-शैली में रोचकता आ जाया करती थी अथवा उक्त पद्यो की सरल व्याख्या भी उपस्थित हो जाती थी तथा इसके साथ ही कथाप्रवाह को अधिक गति भी मिल जाती थी। एक ही प्रकार के पद्यो को व्यवहार मे न लाकर उन्हे बदलते जाना अथवा पद्य एव गद्य के सम्मिश्रण द्वारा वर्णन की प्रक्रिया मे किसी प्रकार की मन्दता का न आने देना, उक्त रचना-शैली के लिए कदाचित् रूढिगत बन चुका था। वैदिक सहिताओ, ब्राह्मणग्रथो, उपनिषदो, जातक कथाओ तथा इधर की प्राकृत एव अपभ्रंश की कथात्मक रचनाओ में भी हमे इसके न्यूनाधिक उदाहरण मिल सकते हैं। वैदिक, बौद्ध एव जैन साहित्यो की धार्मिक एव लौकिक कथाओ का रूप अधिकतर इसी प्रकार का दीख पड़ता है। इस रचना-शैली का ही कोई न कोई रूप, किसी प्रबधात्मक रचना के लिए कदाचित् सब कही अत्यन्त आवश्यक समझा जाता आया है।

फारसी की मसनवी नामक रचनाओ को यहाँ की प्रबधात्मक रचनाओ से अधिक भिन्न नही ठहराया जा सकता। ये वह 'मुसलसल नज्म' अथवा क्रमानुसार व्यवस्थित पद्यो वाली रचनाएँ होती है जिनके प्रत्येक नज्म वा पद्य का अपने आगे आने वाले तथा पीछे छोड दिये जाने वाले ऐसे अन्य अग के साथ कुछ न कुछ लगाव रहा करता है और जो इनके सामूहिक बल के ही आधार पर सदा पूर्ण भी होती समझी जा सकती है। इनकी लबाई किसी भी दूरी तक जा सकती है और इनके विषय भी जो चाहे हो सकते है। इनके पद्यो की दो

अर्द्धालियो को परस्पर तुकान्त होना चाहिए। किंतु, फिर भी इसके लिए यह आवश्यक नही कि साधारण गजलो की भाँति उनके सारे तुक पूरे काव्य में एक समान पाये जायँ। फारसी छदो के विशेषज्ञो ने इस रचना-शैली के लिए पाँच विशिष्ट 'वह्रो' अथवा छदो को अधिक उपयुक्त माना है। उनमें से प्रत्येक के लिए यह भी वतला दिया है कि वह किस विपय विशेप का वर्णन करते समय सदा प्रयोग मे आया करता है। परतु स्वय फारसी में ही रचित अनेक प्रेम-गाथाओ के आधार पर कहा जा सकता है कि इस नियम का पालन सर्वत्र पूरी सावधानी के साथ किया गया नही पाया जाता। जहाँ तक पता चलता है स्वय फिरदौसी, सादी आदि महान् कवियो की मसनवी रचनाओ तक मे हमे इसके अनेक अपवाद मिल सकते है। यहाँ पर उल्लेखनीय केवल इतना ही है कि वाह्य रूप की दृष्टि से वहुत कुछ साम्य होने पर भी सभी मसनवियो के विपय का केवल प्रेमकहानी ही होना अनिवार्य नही, न यही आवश्यक है कि इनके सभी उदाहरण अधिक लवे रूपो मे ही प्रस्तुत किये गए मिले। मौलाना रूम की प्रसिद्ध मसनवियो तक का आकार-प्रकार केवल एक ही ढग का नही पाया जाता। मसनवियो की सबसे वड़ी विशेपता हमे इस वात मे ही दीख पडती है कि ये अपने पद्यो के एक दूसरे के साथ किसी न किसी रूप मे सम्वद्ध रहने के कारण, अपने वर्ण्य विपय का निर्वाह किसी क्रमिक एव सुव्यवस्थित रूप मे कर ले जाती है। इस प्रकार की प्रवधात्मकता के आ जाने से इनके रूप में एक विशिष्टता भी आ जाती है जो मुक्तको जैसी छोटी रचनाओ के विपय मे कभी स्वभावत· सभव नही कही जा सकती।

फारसी मसनवियो और विशेपकर उनके प्रेमकथात्मक रूपो मे हमे कतिपय अन्य वातें भी दीख पडती है जिनका समावेश, किसी नियम विशेप के अनुसार किया गया जान पडता है तथा जिन्हे हिंदी सूफी प्रेमगाथाओ के कवियो ने भी अपनाना आवश्यक माना है। इनमे से भी परमेश्वर की वदना, रसूल के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन, समसामयिक शासक की प्रशसा, आत्मपरिचय, रचना-काल निर्देश आदि कुछ वातें प्राय: प्रत्येक रचना के अतर्गत औरअधिकतर एक निश्चित क्रम से आती दीख पडती है और ये भारतीय प्रवधकाव्यो के उन मगलाचरणो का स्मरण दिलाती है जिनका निर्माण कदाचित्, केवल विघ्न-निवारण तथा कार्य-

सिद्धि के उद्देश्य से आरभ में ही कर दिया जाता था। भारतीय साहित्य के अतर्गत हमे इसके अनेकानेक उदाहरण मिलते हैंऔर इनके साथ प्राय नम्रता-सूचक पद्यो का भी समावेश कर दिया गया मिलता है। किंतु यहाँ पर ऐसी किसी बात का भी कथन किया गया नही पाया जाता जिससे कवि का कोई स्पष्ट परिचय भी उपलव्व हो सके। पिछले खेवे के सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्र श के कवियो ने कभी-कभी अपने सरक्षको की ओर भी अवश्य सकेत कर दिया है, किंतु उसके आवार पर हम न तो किसी ऐसे नियम विशेप का अनुमान कर सकते हैं, न कोई महत्वपूर्ण परिणाम ही निकाल सकते हैं। इसके सिवाय, कम से कम सस्कृत एव प्राकृत की अधिकाश रचनाओ मे हमे पद्यों वाले तुको के एक होने के भी उदाहरण नही मिलते, जैसा फारसी की मसनवियो तथा भारतीय सूफियो की प्रेमगाथाओं में पाया जाता है। फिर भी, जैसा इसके पहले भी कहा जा चुका है, यहाँ के प्रवधकाव्यो में हमें वे प्राय. सारी अन्य वाते ठीक उसी रूप मे दीख पड़ती हैं जिसमे वे मसनवियो के अतर्गत पायी जाती है और जिनके आवार पर ही वस्तुत· हम इन दोनो प्रकार की रचनाओ मे विशिष्ट साम्य का भी परिणाम निकाल सकते है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श तथा हिंदी के महा-काव्यो अथवा खंडकाव्यो तक की रचना के लिए कतिपय नियम निर्वारित है जिनका पालन करना कवि के लिए आवश्यक समझा जाता आया है। यद्यपि वे मसनवी नामक रचनाओं के सम्वध मे भी ठीक प्रकार से लागू होते नही कहे जा सकते। इसमे सन्देह नही कि उनमे से कई एक ऐसे है जिनके साथ उपयुक्त नियमो की कोई मौलिक भिन्नता भी नही सिद्ध की जा सकती तथा जो दोनो प्रकार की उपलव्व रचनाओ में एक ही प्रकार उदाहृत भी दीख पडते है। उत्तरी भारत के हिंदी सूफी कवियो के सामने इन दोनो प्रकार के आदर्श उपस्थित रहे हैं और उन्होने इन दोनो से ही यथेप्ट लाभ उठाने की चेप्टा की है।

अपभ्र श के 'चरित काव्यो' में जो प्रवानत. जैन कवियो द्वारा लिखे गए मिलते है, हमे वहुत-सी उन वातो के भी उदाहरण मिल जाते है जिन्हे हम कभी-कभी मसनवी रचनाओ की विशेपता के रूप मे मान लिया करते हैं। इनमे सर्वप्रथम , हमें जैन कवियो द्वारा की गई तीर्थंकरो की स्तुति मिलती है जो

प्रायः सूफी कवियों की ओर से किये गए पैगम्बर और उनके साथियों के प्रशसात्मक वर्णनो जैसी हुआ करती है। इनमें से कुछ के अतर्गत उनके प्रारभिक अगो मे ही उन कवियो की ओर से प्रस्तुत किया गया अपने आश्रयदाता का वर्णन तथा अपनी रचना के प्रधान उद्देश्य का उल्लेख भी पाया जाता है जो सूफी कवियों की रचनाओ जैसा ही प्रतीत होता है। इसके सिवाय चरितकाव्यो मे हमें उन अलौकिक घटनाओ का न्यूनाधिक समावेश किया गया भी दीख पडता है जो सूफियो की प्रेमगाथाओ मे मिला करती है तथा प्राय घटनाओं के ही अनुसार यहाँ पर किये गए अग-विभाजन के भी उदाहरण मिल जाया करते हैं। चरित शब्दो मे सभवतः उस समय तक प्रचलित पौराणिक रचना-पद्धति के अनुसार विशिष्ट घटनाओ के आधार पर शीर्षक देने की प्रणाली प्रतिष्ठित हो गई थी जैसी प्रेमगाथाओं मे भी पायी जाती है और जो सर्ग-विभाजन की पद्धति से भिन्न है। चरितकाव्यो की यह विशेषता इन्हे महाकाव्यो वा खडकाव्यों से पृथक् कर देती है और इन्हे मसनवियों के निकट भी ला देती है। अतएव, ऐसी बातो के आधार पर हम यह भी अनुमान कर सकते है कि हिंदी के सूफी कवियो ने उन्हे सभवत चरितकाव्यो मे ही ग्रहण कर लिया होगा और उनके लिए इन्हे मसनवियों का ही अनुकरण करना आवश्यक न रहा होगा। जहाँ तक प्राकृतिक दृश्यो तथा षड्ऋतुओं अथवा बारहमासा वाले वर्णनों का सम्बध है ये बाते भी भारतीय परपरा की ही देन समझी जा सकती हैं। अतएव हिंदी के इन सूफ़ी कवियो ने इन पर लिखते समय अधिकतर या तो चरितकाव्यो का अनुसरण किया है अथवा इन्हे कदाचित् सीधे लोकप्रचलित कहानियो से ग्रहण कर लिया है जिन दोनो भी दशाओं मे अनिवार्यत ये मसनवी-रचयिताओं के ऋणी नही ठहराये जा सकते। फिर भी दक्खिनी हिंदी के सूफी कवियो के विषय मे भी हम ऐसा नही कह सकते और उन्हे ईरानी परपराओ द्वारा कही अधिक प्रभावित भी पाते हैं। उन्होने तो अपनी रचनाओ के छदो तक के प्रयोगो मे फारसी की मसनवियों का ही अनुसरण किया है और फारसी की बह्रो को अपने काम मे लाकर उर्दू साहित्य वाले कवियो के लिए एक पृथक् आदर्श की प्रतिष्ठा कर दी है।

इस प्रसग मे यहाँ पर उत्तरी भारत के सूफियो तथा जैन चरितकाव्यों के रचयिताओं की मनोवृत्तियो की ओर भी हमारा ध्यान चला जा सकता है और तदनुसार हम इन दोनो वर्गो वाले कवियो की रचनाओ का तुलनात्मक अध्ययन भी कर दे सकते है । चरितकाव्यों के जैन कवियो का उद्देश्य भी धार्मिक था और वे भी इन सूफी कवियो की ही भाँति अपनी रचनाओ द्वारा किसी न किसी मत वा सिद्धान्त का प्रचार करना अपना अभीप्ट समझा करते थे । परतु जैनियों का धर्म जहाँ उन्हे त्याग, तप, अहिंसा, वैराग्य एव नैतिक आचरण सम्वधी बातों को ही विशेप महत्व देने के लिए प्रेरित करता था, वहाँ सूफियो की मान्यता के अनुसार इन्हे गौण स्थान ही दिया जा सकता था । प्रेम की प्रतिप्ठा इन सभी से कही अविक आवश्यक थी । तदनुसार जैन कवियो ने जहाँ, दो प्रेमियों की चर्चा करते समय भी उन्हे अत मे, प्रेम के प्रति वहुत कुछ उपेक्षा का ही भाव प्रदर्शित करने के लिए वाध्य किया है, वहाँ सूफियो कवियो की ओर से यह यत्न वरावर किया गया है कि उक्त सारी वातो को अधिक से अधिक प्रेम की सिद्धि का साधन मात्र ही ठहरावे । इसके सिवाय चरितकाव्यो वाले कवियों के समक्ष सूफियो जैसा किसी अल्लाह के साथ अत मे, मिल जाने का भी आदर्श नही था, प्रत्युत उनका लक्ष्य जिनत्व की उस दशा को प्राप्त कर लेना ही कहा जा सकता था जिसके अनुसार मानवीय गुणो के चरमोत्कर्ष की सार्थकता सिद्ध की जा सकती है । फलत जैन कवियो की कथाओं का रूप उपमिति परक होता हुआ भी सूफी प्रेमगाथा के जैसा 'इश्क मजाजी' के आधार पर 'इश्क हकीकी' के स्पष्टीकरण का उद्देश्य नही इगित करता था, प्रत्युत यह उनके मूल धार्मिक उद्देश्य की सिद्धि मे सहायक मात्र वन सकता था । इसके द्वारा वे अपने प्रमुख सिद्धान्तो की व्याख्या कर देते तथा उन्हे उदाहृत भी कर दिया करते थे । तदनुसार हम इन दोनो प्रकार के कवियो की रचनाओं में दो भिन्न वातो का समर्थन और उनकी प्रशसा करते हुए भी पाते है । सूफी कवि जहाँ वार-वार प्रेम एव विरह का गौरव-गान किया करता और उसे सर्वस्व तक मान वैठता हुआ दीख पडता है , वहाँ जैन कवि को ऐसे प्रसगो का लाना कभी महत्वपूर्ण नही जान पडता है, प्रत्युत इसकी जगह वह सज्जनो तथा आदर्श

पुरुषो की प्रशसा कर दुर्जनादि की निंदा करने तक पर भी आ जाया करता है और प्रेमव्यापार मे पूर्ण सफल पात्रो तक को किसी जिन धर्मी महापुरुष की शरण मे ले जा कर उन्हे प्रेम की निस्सारता स्वीकार करने के लिए प्राय. वाध्य भी कर दिया करता है ।

सूफी एव असूफी दोनो प्रकार के ही प्रेमाख्यानो के अतर्गत वहुत-सी कथा-रूढियो से काम लिया गया है । इस प्रकार उनके द्वारा वर्ण्य विषय मे रोचकता लाने तथा वस्तुत एक उन्हे रूपविशेष देने का भी यत्न किया गया है । इनमे से बहुत-सी तो दोनो मे एक समान ही आती दीख पड़ती हैं और लगभग एक ही प्रकार का परिणाम निकालने के लिए उनका प्रयोग किया गया भी दीख पड़ता है । प्रेमियो एवं प्रेमिकाओ के वीच प्रेम-भाव को जागृत करने तथा उसकी पुष्टि मे सहाया प्रदान करने अथवा दोनो को किसी प्रकार मिला देने तक के लिए प्राय. पक्षियो , अप्सराओ, सखियो वा दासियो से काम लिया गया है। इसी प्रकार, नख-शिख वर्णन, विरह-वर्णन तथा प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे भी हमें दोनो प्रकार की रचनाओ के अतर्गत उल्लेखनीय भिन्नता नही दीख पडती । इस विषय मे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि सूफी कवियो ने अधिकतर अतिशयोक्ति से काम लिया है जो ईरानी काव्य रचना-परपरा के प्रभावो का परिणाम भी कहा जा सकता है। इसी प्रकार सूफी प्रेमाख्यानो मे जहाँ पर कथा के प्रारभ मे पूर्वजन्म का प्रसग ला दिया गया है और उसके द्वारा नायक एवं नायिका के प्रेम-सम्बघ के स्थायित्व को प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है, वहाँ पर यह हमे उनके कवियो के भारतीय सस्कार को सूचित करता है और इसके उदाहरण वैसी सूफी रचनाओ मे नही मिलते । जायसी ने अपनी 'पद्मावत' मे पद्मावती एव राजा रतनसेन के सम्बघ का पूर्वजन्म से निश्चित जैसा होना अवश्य वतलाया है तथा मझन ने भी अपनी 'मधुमालती' की नायिका के प्रति ऐसी बातो की चर्चा स्वय उसके नायक की ओर से ही करा दी है । परंतु इन सूफी प्रेमाख्यानो मे हमे कही पर भी ऐसे प्रसग देखने को नही मिलते, जहाँ पर कोई नायिका 'वीसलदेवरास' क राजमती जैसे अपने को पूर्वजन्म की हरिणी होना कहती हो अथवा चतुर्भुजदास की मधुमालती के नायक और नायिका जैसे उसे कामदेव

की राख से उत्पन्न कहा गया हो। जायसी एव मंझन पर लोकप्रचलित प्रेम-कहानियो की कथारूढ़ि का प्रभाव मात्र भी ठहराया जा सकता है। असूफी प्रेमाख्यानों में पायी जाने वाली कुटनियो का भी पता हमें सूफी कवियो की वैसी रचनाओं मे कही नही चलता जिसका प्रधान कारण केवल यही हो सकता है कि इन कवियो को अधिकतर 'सत' की रक्षा का उदाहरण उपस्थित करना रहता है जिसके लिए अवसर प्रदान करने के यत्न वैसी नारियो की ओर से ही किये जाते हैं। सूफी कवियो का ध्यान प्राय: इस ओर नही जाया करता और यदि कभी चला भी जाता है तो वे जायसी द्वारा 'पद्मावत' मे चित्रित की गई देवपाल वा अलाउद्दीन की दूतों की भाँति अधिकतर अपवाद के रूप में ही आ जाती हैं और उसको वैसा महत्व भी नही दिया जाता। असूफी कवियो की एक तीसरी विशेषता अपने प्रेमाख्यानो के अतर्गत सगीत को विशेप महत्व देने मे भी देखी जा सकती है। सगीत को इस्लाम के अनुसार अधिकतर हेय ही ठहराया गया है, जिस कारण सूफियो द्वारा उसे महत्व दिया जाना कभी स्वाभाविक नही कहा जा सकता। सूफीमत के चिश्तिया सप्रदाय वालो ने उसे प्राय: अपनाने की चेप्टा की है, किंतु यह केवल अपवाद भी कहा जा सकता है। अतएव, असूफी प्रेमाख्यान 'माधवानल कामकन्दला' तथा 'छिताई चरित' अथवा 'रसरतन' के भी नायक जहाँ अपनी प्रेयसियो की प्राप्ति मे संगीत कला से काम लेते दीख पड़ते हैं, वहाँ सूफी प्रेमाख्यानो के नायको मे इस प्रकार की चेप्टा का हमे कोई भी स्पप्ट उदाहरण नही मिलता। सूफी कवि कुतवन की 'मृगावती' का नायक अपनी किंगरी अवश्य वजाता है और वह इस प्रकार, नायिका के नगर वालों का ध्यान अपनी दयनीय दशा की ओर आकृप्ट भी कर लेता है, किंतु उसका यह प्रयास अधिकतर केवल अपनी विवशता के प्रदर्शनमात्र सा ही लगता है। इस प्रकार की चेप्टा द्वारा वह अपनी सगीत कला सम्बधी उस निपुणता का भी कोई परिचय नही दे पाता जो उपर्युक्त माधवानल मे दीख पड़ती है। दक्खिनी हिंदी वाले प्रेमाख्यानो मे तो हमें ऐसे किंगरीवादक जोगी नायको के भी उदाहरण बड़ी कठिनाई से ही मिल सकेंगे।

उत्तरी भारत के हिंदी सूफी प्रेमाख्यानो का इस भापा के साहित्य में एक

अपना विशिष्ट स्थान सुरक्षित समझा जा सकता है। इनकी रचना यहाँ उस काल मे आरभ होती है, जब दिल्ली में मुस्लिम शासको का प्रभुत्व पूर्ण रूप में जम चुका है, जिस समय फीरोजशाह तुगलक (सन् १३५१-८८ ई०) अपने दीन इस्लाम के प्रचार एव काफ़िरो के दमन के प्रति कृतसकल्प हो गया रहता है और जब तक ईरान की ओर से आकर भारत मे प्रचलित हुए सूफीमत से यहाँ के निवासी बहुत कुछ परिचित एव प्रभावित भी हो चुके रहते हैं। इस समय अर्थात् ईसवी सन् की चौदहवी शताब्दी के चतुर्थ चरण के पहले ही यहाँ पर फारसी साहित्य का भी प्रचार हो गया रहता है तथा न केवल फारसी भाषा को यहाँ के दरबारो मे पूर्ण प्रश्रय मिलता रहा करता है, अपितु इसमें अमीर खुसरो जैसे प्रवीण कवि, काव्य-रचान मे प्रवृत्त होकर अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थो का निर्माण तक कर दिये रहते है। केवल उत्तरी भारत मे ही नहीं, प्रत्युत दक्षिण के सुदूर प्रान्तो तक के वातावरण मे इस समय तक सर्वत्र इस्लाम धर्म और उसके द्वारा प्रभावित ईरानी सस्कृति का बोलबाला प्रत्यक्ष रहा करता है। किसी व्यक्ति अथवा विशेपकर किसी एक मुस्लिम के लिए तो यह प्राय. असभव-सा ही रहता है कि वह इस देश के पूर्व प्रचलित साहित्य और उसकी परपरा के प्रति कोई रुचि प्रदर्शित करे अथवा तदनुकूल ग्रथ-रचना मे प्रवृत्त हो सके। ऐसे युग मे और इस प्रकार के लोगो के हृदय में जन-साधारण के बीच पारस्प-रिक सौहार्द एव सहानुभूति जागृत करने की प्रवृत्ति का घर कर लेना तथा उनका तदनुसार, साहित्य-रचना के माध्यम से कार्य करना आरभ कर देना कोई साधा-रण-सी बात नही थी, जिस कारण इसका परिणाम भी असाधारण ही सिद्ध हुआ। उत्तर प्रदेश (वर्त्तमान जिला रायबरेली) के डलमऊ गाँव मे, जहाँ पर भर्र जाति के हिन्दू राजाओ का एक प्राचीन दुर्ग वर्त्तमान था कहते है कि इसी दुर्ग मे किसी समय मुस्लिम आक्रमणकारियो ने ठीक होली के दिन अचानक मारकाट आरभ कर दी थी जिसके फलस्वरूप दुर्ग विध्वस हो गया था वहाँ तथा के भर्र वीर लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। वहाँ पर फारसी पढाने के लिए सभवतः कोई 'मकतब' भी चल रहा था, जिसके मुल्ला दाऊद के हृदय मे भी उपर्युक्त प्रवृत्ति जगी और उसने एक ऐसी रचना प्रस्तुत करने का सकल्प

किया जिसके द्वारा न केवल हिन्दू तथा मुस्लिम जनता के विगडते हुए पारस्परिक सम्वध को सुधारने मे सहायता मिले, प्रत्युत जिसके आवार पर अपने सूफीमत की मान्यताओ का प्रचार भी सभव हो सके । तदनुसार उसने वहाँ की अवधी हिंदी के माध्यम से हिज़री सन् ७७९ अथवा ७८१ (अर्थात् सन् १३७७ वा वा १३७९ ई०) मे अपनी 'चदायन' प्रेमगाथा की रचना कर डाली । उसने ऐसा करते समय किसी नयी कहानी के गढने का यत्न नही किया , न अपने पूर्ववर्ती अमीर खुसरो की भाँति, फारसी साहित्य-परपरा का अविक अनुसरण करना ही उचित समझा । उसने वहाँ की पूर्व प्रचलित लोरक और चदा की प्रेमकहानी के लोकगीतात्मक कथानक को ही अपनी रचना का आवार वनाया तथा पहले से व्यवहार मे लायी हुई, जैन चरितकाव्यो अथवा अन्य वैसी प्रवधात्मक रचनाओ की रचना-शैली को भी अपना लिया । इस प्रकार, उसने सयोगवश एक ऐसे सूफी प्रेमाख्यानो की परपरा प्रतिष्ठित कर दी जो आज प्राय पॉच-छह सौ वर्षो तक वरावर चली आई । इस कार्य मे उसका अनुसरण करने वाले सूफी कवियो ने उसके उपर्युक्त आदर्श का पालन अविक से अविक मात्रा मे किया है । जहाँ तक सभव हो सका है, उन्होंने एक निश्चित रचना-पद्धति को ही अपनाने का प्रयास किया है । फलत उनके यत्नो द्वारा हिंदी साहित्य के अतर्गत एक ऐसे विशिष्ट अंग का निर्माण हो गया है जो एक ही साथ, न केवल हमारी लोकगाथाओ की सुरक्षा मे सहायक होता है और इस प्रकार, हमारी लोक सस्कृति के वास्तविक महत्व को भी प्रत्यक्ष कर देता है, अपितु यह मुस्लिम कवियों द्वारा प्रदर्शित हिंदी प्रेम तथा इसके कारण, हिन्दू जनता की ओर से प्रकट की जाने वाली सूफीमत के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि को भी भली भाँति उदाहृत कर देता है । हिंदी के इन सूफी काव्यो ने जन-जीवन की अविक से अविक अभिव्यक्ति करके लोक-मानस को छूने का भी सफल प्रयास किया है जो इनकी एक अन्य अपनी विशेपता कही जा सकती है ।

दक्खिनी हिंदी के सूफी प्रेमाख्यान

दक्खिनी हिंदी में रची गई सूफी प्रेमगाथाओ का आरभ उस समय हुआ जव दक्षिण भारत मे वहमनी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। सुल्तान मुहम्मद विन तुगलक के शासनकाल में जव उसका साम्राज्य विशृखलित होने लगा था, उधर के मुस्लिम अमीरो ने आपस मे मिलकर किसी इस्माइल खाँ नामक व्यक्ति को दौलतावाद मे सुल्तान चुन लिया। परतु इस्माइल खाँ ने कुछ ही दिनो मे, हसन के पक्ष मे अवकाश ग्रहण किया और इस प्रकार स० १४०४ में हसन उसकी गद्दी पर वैठकर 'हसन गागू वहमनी' नाम से प्रसिद्ध हो गया। तदनन्तर वहमनी राज्य का विस्तार क्रमश: उत्तर की ओर नर्मदा नदी से लेकर दक्षिण मे लगभग कृष्णा नदी तक होता चला गया। इसके सुल्तानो की सख्या १४-१५ तक वतलायी जाती है जिनका राज्यकाल लगभग दो सौ वर्षो तक कायम रहा और उनमें से कुछ ने अच्छी योग्यता का भी परिचय दिया। वहमनी राज्य के प्रसिद्ध मत्री महमूद गावाँ (स० १४६२-१५३८) के प्रवधकाल मे तो उधर की स्थिति पर्याप्त ऊँचे स्तर तक पहुँच गई थी। उस युग के एक रूसी यात्री अथनेसियस निकितिन का कहना है क राज्य की जनसख्या उस काल मे वहुत अच्छी थी, भूमि की पैदावार प्रचुर मात्रा मे हो रही थी, सडके डाकुओं से सुरक्षित रहा करती थी तथा राजधानी एक भव्य नगर के रूप में दीख पडती थी।[1] फिर भी इसमें सन्देह नही कि जितने सुखी वहाँ के अमीर एव धनी व्यक्ति जान पडते थे, उतने सर्वसाधारण प्रसन्न नही थे और वडो में भी केवल उन्ही की दशा सन्तोषपूर्ण कही जा सकती थी जो इस्लाम धर्म के अनुयायी थे तथा विशेषकर जिन पर तात्कालीन शासको की कृपादृष्टि भी रहा करती थी। विदेशियो के प्रति वहाँ प्राय. विरोधभाव भी प्रदर्शित किया जाता था, किंतु अरव और ईरान जैसे देशो से जो दरवेश वा मुस्लिम सत आ जाते थे और जो 'मजहवे इस्लाम' का प्रचार किया

१. ईश्वरीप्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० १५२ पर उद्धृत।

करते उन्हें राज्य में प्रश्रय भी मिल जाया करता था और इस प्रकार, मुस्लिम साहित्य एवं संस्कृति को प्रोत्साहन भी प्राप्त था। विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध-काल में समय पाकर बहमनी राज्य का भी ह्रास आरंभ हुआ और बरार की इमादशाही, बीजापुर की आदिलशाही, अहमदनगर की निजामशाही, गोल्कुंडा की कुतुबशाही तथा बीदर की बीरदशाही नामक पाँच सल्तनतों ने उसकी जगह लेकर उसकी परंपरा भी निभायी।

दक्खिनी हिंदी की सबसे पहली सूफी प्रेमाख्यान जिसका अबतक पता चल सका है 'कदम राव व पदम' नाम की एक मसनवी है जिसके रचयिता का नाम 'निजामी' बतलाया जाता है और कहा जाता है कि वह "सुल्तान अहमद शाह सालिस बहमनी (हि० सन् ८६५-७) के जमाने में मौजूद था।"[२] 'दकन में उर्दू' के लेखक नसीरुद्दीन हाशमी साहब का यह भी कहना है कि वह सुल्तान का दरबारी शायर था। उन्होंने उसकी इस रचना की कोई प्रति स्वयं भी देखी थी तथा उस समय इसके कुछ नोट भी लिये गए थे, किंतु पूरी मसनवी के पढ़ने का उन्हें अवसर नहीं मिला। इसकी एक प्रति का उन्होंने 'अंजुमन तरक्किए उर्दू' (पाकिस्तान) में मौजूद होना भी बतलाया है और यह भी कहा है कि उसके 'चंद सफहों के फोटू' उक्त संस्था के ही मुखपत्र 'कौमी जबान' में प्रकाशित भी हो चुके हैं। हाशमी साहब ने इस मसनवी का रचनाकाल निश्चित करने के लिए जिन कुछ पंक्तियों को अपनी उक्त पुस्तक में उद्धृत किया है, वे इस प्रकार हैं—

शहंशह बड़ा शाह अहमद कुँवर। परतमाल सेन्सार करतार औहार (?)।
धनी ताज का कौन राजा बहंग। कुँवर शाह का शाह अहमद भजंग (?)।
लकब शहअली आल बहमन बली। बली थे बहुत बुधंदा कली (?)।

इसी प्रकार उन्होंने मसनवी में दिये गए विविध शीर्षकों से भी एक दिया है जो 'मदह सुल्तान अलाउद्दीन बहमनी नूर अल्ला मरकद:' के रूप में है।[३] इन

२. नसीरुद्दीन हाशमी : दकन में उर्दू (१९५२ ई०), मकतबः मुईउन अदब, उर्दू बाजार, लाहौर, पृ० ३३।

३. वही, पृ० ३४।

उद्धृत पक्तियो मे से प्रथम तीन के कम से कम द्वितीय चरण स्पष्ट नही होते जिस कारण केवल इन्हें ही प्रमाण मानकर अतिम निर्णय करना उचित नही है। फिर भी इन चारो के आवार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस प्रेमगाथा के रचनाकाल तक सभवत वहमनी सुल्तान अलाउद्दीन का देहान्त हो चुका था, उसकी उपाधि 'वली' की थी तथा उसके शाहजादे अथवा युवराज का नाम 'अहमद' था।

परतु हाशमी साहव ने इसके अतिरिक्त कुछ और भी परिणाम निकाला है जिससे सहमत होना कदाचित् इतिहास के तथ्य से दूर जाना कहा जा सकता है। उनका कहना है कि 'वहमनी के सिलसिले से वाज होता है कि सिवाय ग्यारहवे हुक्मरान अलाउद्दीन हुमायूँ शाह के कोई और ऐसा हुक्मरान नही हुआ जिसका लकव अलाउद्दीन हुआ और अहमद शाह उसके वली अहद का नाम हो। यह अहमद शाह सालिस सन् ८६५ हि० से सन् ८६७ हि० तक हुक्मरान रहा है। इसलिए इस मसनवी की तसनीफ भी इसी जमाने मे करार देनी चाहिए'[४] जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक तथ्यो से भी होती नही जान पडती। इतिहास की पुस्तको में वहमनी सल्तनत की परपरा के ग्यारहवे सुल्तान हुमायूँशाह के नाम के साथ 'अलाउद्दीन' शव्द भी जुड़ा हुआ नही दीख पडता, वल्कि उसके पिता का ही नाम 'सुल्तान अलाउद्दीन अहमद शाह द्वितीय' मिलता है[५] और उसका राज्यकाल भी सन् १४३५ ई०-१४५७ ई० अर्थात् स० १४९२-१५१४ पाया जाता है। इतिहास से ही हमें यह भी पता चलता है कि सुल्तान अलाउद्दीन अहमदशाह के पिता अहमद शाह (रा० का० स० १४७९-१४९२) ने अपने लिए 'वली' की उपाधि धारण की थी और वह अपने पुत्र जाफर खाँ को शासनभार सौप कर उससे विरत भी हो गया था।[६] यही जाफर खाँ आगे उक्त 'सुल्तान अलाउद्दीन अहमद शाह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और हो सकता है कि अपने पिता के जीवनकाल मे यही 'अहमद कुँवर' भी रहा हो। वैसी दशा मे निजामी का 'शाहशाह वडा शाह' उसका पिता अहमद

---

४. वही, पृ० ३५।

५. जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, लेटर्स (भा० १ सन् १९३५ ई०) निवंध सं० ३, पृ० ८४।

हो सकता है जिसका ही वह 'अहमद कुँवर' भी कहा जा सकेगा। निजामी की रचना के अतर्गत पाये जाने वाले उक्त 'मदह' वाले शीर्षक से भी केवल यही ध्वनित होता है कि उसके निर्माण के समय तक सभवत सुल्तान अलाउद्दीन अहमदशाह का भी देहान्त हो गया था जो उक्त प्रकार से, हुमायूँ शाह का पिता ही सिद्ध होता है, स्वय हुमायूँ शाह नही। इसके सिवाय हुमायूँ शाह के किसी 'अहमद शाह' नामक युवराज (वली अहद) के अस्तित्व का भी समर्थन किसी इतिहास ग्रथ से नही होता, न उससे यही सिद्ध होता है कि ऐसा कोई अहमद शाह पीछे 'अहमद शाह सालिस' (वा तृतीय) नाम से बहमनी सुल्तान हुआ था। सुल्तान हुमायूँ शाह का उत्तराधिकारी निजाम शाह हुआ जो एक अष्टवर्षीय बालक मात्र था और जिसकी मृत्यु भी उसके विवाह की रात्रि मे ही हो गई। यह घटना हि० सन् ८६७ अर्थात् स० १५१९ की है जब कि उसके स्थान पर उसके नव वर्षीय छोटे भाई को सुल्तान बनाया गया और यह अपने नाम 'मुहम्मद शाह तृतीय' के साथ, तब से स० १५३९ तक शासन भार सँभाले रहा। इसमे इसे महमूद गावाँ तथा अपनी माता मख़दूम जहाँ (मृ० स० १५२९) से पूरी सहायता मिली तथा इन दोनो का देहान्त भी उसके राज्यकाल मे ही हो गया। इस प्रकार यदि हाशमी साहब 'निजाम शाह' को 'अहमद कुँवर' कहने लगे तो वह भी ठीक नही जान पडता, न 'मुहम्मद शाह सालिस' ही 'अहमद शाह सालिस' हो पाता है। उनका यह अनुमान भी कि बहुत मुमकिन है कि शायर ने अपना तख़ल्लुस (उपनाम या कविनाम) बादशाह के लकब पर 'निजामी' करार दिया हो[७] किसी अन्य विश्वसनीय प्रमाण के भी अभाव मे मान्य नही समझा जा सकता। हाशमी साहब ने इतिहासकार फिरिश्ता के ग्रथ मे भूल से 'अहमद शाह' की जगह 'निजामशाह' का लिखा जाना भी माना है[८] जिसका निर्णय करने का हमारे पास अवश्य कोई साधन नही है।

हाशमी साहब ने अपनी पुस्तक मे आगे इस मसनवी से कुछ और भी पक्तियाँ

---

६. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० १४८।

७. दकन में उर्दू, पृ० ३५। ८. वही, पृ० ३५।

उद्धृत की हैं जो अधिकतर इसके आरभ की ही जान पडती है और जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि इसकी रचना-शैली साधारणत वही है जो बहुत सी अन्य सूफ़ी मसनवियो मे देखी जाती है। यहाँ पर भी प्राय उसी प्रकार 'गुसाईं' परमेश्वर की स्तुति की गई है, उसी प्रकार बडे लोगो का गुणगान किया गया है और फिर मुल्तान का 'मदह' भी मौजूद है। परतु इसके अनन्तर जो उदाहरण मुख्य विषय अथवा कहानी-सम्बधी दिये गए हैं उनसे उसके किसी भी अग का कोई स्पष्ट सकेत नही मिलता। न तो यही पता चलता है कि इसके नायक और नायिका कहाँ के रहनेवाले थे, न यह कि उनके पारस्परिक सम्बध की घटनाएँ ही क्या रही होंगी। ऐसी दशा मे हम इस बात का भी निर्णय कर सकने मे असमर्थ हैं कि इसका कथानक निरा काल्पनिक है अथवा किसी प्रचलित आधार पर आश्रित है। इसे हम एक शुद्ध प्रेमगाथा कह सकते हैं अथवा कोई उपमिति कथा वा कथारूपक ठहरा सकते हैं, इसके निर्णय की भी पूरी सामग्री उपलब्ध नही। इस रचना का छद अवश्य फारसी का कोई बह्र जान पडता है और इसकी भाषा में बहुत से हिंदी वा सस्कृत तक के शब्दो का समावेश दीख पड़ता है। स्वय हाशमी साहब का भी कथन है कि 'हसब रवाज़ क़दीम इसमे अरबी और फारसी के बजाय हिंदी अलफाज ज्यादा हैं। इसकी जबान इस कदर मुश्किल है कि इसका समझना दिक़्क़त तलब है'[९] और कदाचित् इसीलिए उन्होंने इसके वर्ण्यविषय पर कोई प्रकाश डालने का यत्न भी नही किया है। मसनवी की मूलकथा कपरिचय न होने के कारण हमे इसका नाम तक भी कुछ विचित्र सा ही लगता है। इसके 'कदम राव व पदम' पर विचार करते समय पहले ऐसा प्रतीत होता है जैसे कदम राव इसका नायक होगा और पदम वा पदमावती इसकी नायिका होगी। किंतु 'दकन मे उर्दू' में उद्धृत पक्तियो मे से अतिम दो को पढ लेनें पर इसमे सन्देह भी होने लगता है। ये दो पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> कि तूं साच मेरा गुसांई कदम। पदमराव तुज पाँव केरा पदम।
> जहाँ तूं घरे पांय हो सर धरूं। अयस सार की लकतराई करूँ[१०] (?)।

---

९. दकन में उर्दू, पृ० ३५।　　१०. वही, पृ० ३७।

यह एक दुख की वात है कि इस मसनवी की कोई प्रति हमे उपलव्व नही, न अन्यत्र इसके विषय मे कोई विस्तृत चर्चा ही की गई मिलती है। पर्याप्त सामग्री मिलने पर ही दक्खिनी हिंदी की इस पुरानी मसनवी के महत्व का उचित मूल्याकन किया जा सकता है।

'कदम राव व पदम' का रचना-काल यदि इस प्रकार, अलाउद्दीन अहमदशाह द्वितीय का देहान्त हो जाने पर अर्थात् स० १५१४ के अनन्तर मान लिया जाय, तो वह उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी सुल्तान हुमायूँ शाह के राज्यकाल स० १५१४-१५१८ के भीतर पड सकता है। इसे सुल्तान मुहम्मद शाह तृतीय के राज्यकाल स० १५२०-१५३९ अथवा सुल्तान निजामशाह के समय स० १५१८-१५२० तक भी खीच ले जाने की कोई आवश्यकता नही दीख पडती, जव तक इस वात के लिए भी कोई प्रमाण न मिल सके कि इस रचना का निर्माण करने मे निज़ामी को अधिक समय लगाना पडा था। दक्खिनी हिंदी की उपलव्ध प्रेमगाथाओ मे, इस मसनवी के अनन्तर 'कुतुवमुश्तरी' का नाम आता है जो स० १६६६ की रचना है। इसका रचयिता मुल्ला वजही है जिसने इसके कथानक स्वय अपने समय के शाहजादे मुहम्मद कुली के जीवन से तैयार किया है। उसी के आवार पर उसके वाल्यकाल से लेकर उसके किसी मुश्तरी नाम की सुन्दरी के साथ प्रेम सम्वध तक की कहानी प्रस्तुत कर दी है। 'कदम राव और पदम' तथा 'कुतुव मुश्तरी' के वीच इस प्रकार लगभग १५० वर्षो का अन्तर पडता है और इस वीच किसी अन्य ऐसी मसनवी का लिखा जाना, अव तक की उपलव्व सामग्रियो के आवार पर सिद्ध नही किया जा सका है। इस इतने वडे समय के अन्तर को देखकर हमे उत्तरी भारत की सूफी प्रेमगाथाओ के इतिहास का भी स्मरण हो आता है जिसमे भी उवर की ऐसी सर्वप्रथम रचना मुल्ला दाऊद की 'चदायन' के रचनाकाल स० १४३४ वा १४३६ के अनन्तर शेख कुतवन की 'मृगावती' के समय अर्थात् सं० १५६० तक प्राय: १२५ वर्षो का अन्तर पाया जाता है। 'कुतुवमुश्तरी' प्रकाशित हो चुकी है और इसे देखने से पता चलता है कि इसे हम केवल एक शुद्ध प्रेमगाथा मात्र भी कह सकते हैं। इसमे ऐसे स्थल वहुत कम मिल सकेंगे जिनकी व्याख्या सूफी कवियो की विचारधारा के अनसार भी की जाय। शाहजादा मुहम्मद कुली, इब्राहीम कुतुव-

शाह (स० १६०६-३७) का राजकुमार था जो गोलकुडा की कुतुवशाही सल्तनत का चौथा सुल्तान था। अपने पिता के अनन्तर वह स्वय भी सुल्तान हुआ और उसका राज्यकाल स० १६६७ तक चला जवतक, उसके युवराज काल से ही आरभ होकर 'कुतुव मुश्तरी' की रचना समाप्त हो चुकी थी ।

अपने समसामयिक वा ऐतिहासिक पात्रो को लेकर प्रेमगाथा की रचना करने का दक्खिनी हिंदी में, यह कदाचित् पहला ही प्रयास था जो सभवत. अमीर खुसरो द्वारा फारसी मे रची गई 'देवल रानी व खिज्रखाँ' नामक मसनवी के अनुकरण में किया गया था । मुल्ला वजही ने 'कुतुवमुश्तरी' के अतिरिक्त एक अन्य प्रेम-कहानी 'सवरस' की भी रचना की जो प्रधानत. गद्य मे है और जिसमे प्रसगत केवल कुछ ही पद्य वीच-वीच मे आ गए हैं । 'सवरस' की एक विशेपता यह भी है कि उसके प्रायः सभी पात्र 'दिल', 'हुस्न', 'नज़र', 'तन' आदि वस्तुत. काल्पनिक मात्र हैं। उनके पारस्परिक सम्वध की कतिपय घटनाओ के आधार पर, कवि का उद्देश्य 'अकल' पर 'इश्क' की विजय प्रदर्शित करना तथा इस प्रकार सिद्ध भी कर देना है कि 'इश्क हकीकी' तक पहुँचने के लिए 'इश्क मजाजी' एक सर्वथा उपयुक्त 'सीढी' अर्थात् नसेनी का काम दे सकता है । 'सवरस' की रचना स० १६९३ में समाप्त हुई जव तक उत्तरी भारत मे, मुल्ला दाऊद की 'चदायन' के अतिरिक्त, शेख कुतुवन की 'मृगावती' (स० १५६०), मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' (स० १५९७), शेख मझन की 'मधुमालती' (सं० १६०२), शेख उसमान की 'चित्रावली' (स० १६७०), और जान कवि की 'कथा कनकावती' (सं० १६७५) 'मधुकर मालती' (स० १६९१), 'रतनावती' (स० १६९१) आदि तथा शेख नवी की 'ज्ञानदीपक' (स० १६७६) नामक प्रेमगाथाओ की रचना हो चुकी थी, किंतु उनमे इसके जैसे पात्रो की अवतारणा नही की गई थी । मुल्ला वजही ने इसमे कई स्थलो पर इस वात की ओर सकेत करने का भी यत्न किया है कि उसकी यह कृति सर्वथा मौलिक है । परतु खोज से यह वात प्रकट हुई है कि उसकी इस कहानी का मूलस्रोत खुरासान देश के नेशापुर नगरनिवासी किसी फारसी कवि 'फत्ताही' (मृ० सं० १५०६) की रचना 'दस्तूरे इश्क' मे पाया जाता है जिसकी एक व्याख्या उसने स्वय अपनी गद्य पुस्तक 'हुस्न व दिल' में कुछ

विस्तार के साथ कर दी है। 'सबरस' के उर्दू सस्करण की भूमिका लिखते समय डॉ० अब्दुल हक ने उक्त 'दस्तूरे इश्क' को एक बहुत लोकप्रिय ग्रथ कहा है और उसके अनेक अनुवादो तक की चर्चा करते हुए, यह भी बतलाया है कि मुल्ला वज़ही ने कदाचित् उस मूल पुस्तक को न देखकर उसकी व्याख्या मात्र ही पढी होगी। उत्तरी भारत के सूफी कवियो मे सर्वप्रथम शेख उसमान अपनी रचना 'चित्रावली' के अतर्गत कुछ पात्रो के नाम सकारण रखते हुए जान पडते है, किंतु वे भी किसी जीते-जागते व्यक्ति विशेष की ही ओर सकेत करते है। इन कवियो मे केवल नूर-मोहम्मद ही ऐसे हैं जो कदाचित् पहले पहल अपनी 'इन्द्रावती' (स० १८०१) मे और फिर विशेष रूप से अपनी 'अनुराग बाँसुरी' (स० १८२१) मे इस रचना-शैली को अपनाते है तथा उसके पात्रो के नाम 'जीव', 'अत करण', 'बुद्धि', 'चित्त्', 'अहकार' 'सकल्प', 'विकल्प' जैसे सस्कृत शब्दो मे भी देते है। 'अनुराग बाँसुरी' 'सबरस' से सवा सौ वर्षो से भी अधिक समय पीछे की रचना है जिस कारण, उसका इससे प्रभावित होना भी असभव नही कहला सकता।

मुल्ला वजही ने गोलकुडा के कुतुबशाही सुल्तानो की छत्रछाया मे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की थी और उसका एक समकालीन कवि 'गवासी' भी था जिसकी कम से कम 'सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल' तथा 'तूतीनामा' नामक दो मस-नवियाँ प्रकाशित हो चुकी है। 'गवासी' के लिए कहा जाता है कि उसे अब्दुल्ला कुतुबशाह सुल्तान की ओर से 'मलिकुल्शुअरा' की उपाधि भी मिली थी। उसकी उक्त प्रथम रचना का निर्माणकाल स० १६८२ है तथा उसकी कहानी का किसी फारसी गद्य पुस्तक से लिया जाना कहा जाता है। इसी प्रकार उसकी दूसरी मस-नवी का रचनाकाल स० १६९५ बतलाया गया है तथा उसके मूलस्रोत का भी किसी फारसी गद्य ग्रथ अथवा मूलत. सस्कृत की 'शुक सप्तति' मे ही पाया जाना कहा गया है। इन दोनो के देखने से पता चलता है कि इनमे से पहली पर तो शामी परपरा का पर्याप्त रग चढा हुआ है, किंतु दूसरी के लिए भी ऐसा नही कहा जा सकता। 'तूतीनामा' की कहानी का आरभ ही हिंदुस्तान के किसी धनी सौदागर की वाणिज्य-यात्रा से होता है। कहते है कि 'शुक सप्तति' की सत्तर कहा-नियो मे से केवल ५२ को ही चुनकर किसी मौलाना जियाउद्दीन नख़्शवी ने उनका

ारसी अनुवाद हि० सन् ७३० अर्थात् सं०१३२९ में किया था तथा उनमें से ा केवल ३५ को ही चुनकर किसी मुल्ला सैयद मुहम्मद कादरी ने हि० सन् १०९२ र्थात् सं० १६८१ मे उनका एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया और उसकी भी भापा ारसी ही रही। 'गवासी' ने फिर नख्शवी के ही 'तूतीनामा' से ४५ कहानियाँ ली।[११] 'सैफुलमुलूक व वदीउल जमाल' की कहानी मिस्र देश के वादशाह से ारभ होती है और उसमें यवनदेश, चीनदेश, सिंहलद्वीप, इसकन्दद्वीप आदि अनेक थलो की चर्चा आती है तथा उसमे एक ही कहानी को अधिक विस्तार दिया या दीख पड़ता है। परंतु 'तूतीनामा' की कहानी मे, मूल कथा के एक रहते ए भी प्रसगवश ऐसी अनेक अन्य कहानियो का भी समावेश हो जाता है जिनसे सका कोई भी प्रत्यक्ष संवन्ध नही, प्रत्युत जिनकी संख्या केवल दृष्टान्त प्रदान ा व्याज से उत्तरोत्तर वढ़ती ही चली जाती है। उत्तरी भारत के सूफी हिंदी वियो ने ऐसी रचना-शैली को इस रूप मे कदाचित् कभी न अपनाया था, द्यपि उनके लिए यहाँ वैसे आदर्शों की कमी भी नही कही जा सकती थी।

ग़वासी के सम्वंध मे यह भी कहा जाता है कि "इसकी एक और भी मसनवी स्तयाव हुई है जो 'चदा और लोरक' है। यह भी फारसी से तर्जुमा की गई है। सकी तसनीफ सन् १०३५ हि० के पहले हुई होगी।"[१२] किंतु इसकी पूरी प्रति हीं से प्रकाशित भी हुई नही जान पड़ती। 'दकन में उर्दू' के अतर्गत इसकी केवल कुछ ही पक्तियाँ उद्धृत की गई हैं जिनसे कहानी की मूल कथानक का ीक पता नही चलता। फिर भी अन्यत्र[१३] दिये गए इसके कतिपय पद्यो को इनके साथ मिलाकर देखने से यह स्पष्ट होते देर नही लगती कि इस मसनवी का सम्वध प्रसिद्ध लोरिक व चदा की ही कहानी से है। यद्यपि जो कथानक इसका होगा

---

११. सं० मीर सआदत अली रिज़वी : तूतीनामा (हैदरावाद, हि० सन् १३५७) 'मुकद्दमः', पृ० ३१।

१२. दकन में उर्दू, पृ० ७८।

१३. सं० श्रीराम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिंदी प्रचार सभा, हैदरावाद, १९५४, पृ० २८६-९।

वह वस्तुत 'चदायन' की कहानी से अभिन्न भी होगा, यह कहने का हमारे पास कोई साधन नही है। 'चदायन' की कोई भी पूरी प्रति अभी तक उपलब्ध नही हो सकी है, इस कारण यह कहना कठिन है कि उसकी-कथा का मूल रूप क्या है। अव तक इसकी एक से अधिक अधूरी प्रतियाँ ही मिल सकी है। इसकी किसी एक पूरी प्रति का कही विदेश से पाया जाना कहा जाता है जो वास्तव मे देखने पर संपूर्ण कहलाने योग्य नही है। पटना के प्राध्यापक एस० एच० अस्करी साहव को जो अधूरी प्रति मिली है उसमे पाये जाने वाले कतिपय स्थलो के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उसका नायक लोरिक जाति से अहीर है और वह गौर नगर का निवासी है, चदा सहदेव नामक भर की पुत्री है और वह वावन से व्याही गई रहती है। उसे यह बावन के घर से लाती है और उसे अपनी पत्नी वना लेता है तथा उसके ऐसा यत्न करते समय उसे मार्ग मे अनेक प्रकार की वाधाओ का सामना भी करना पडता है। उससे इतना और भी सकेत मिल जाता है कि लोरिक का एक भाई 'कुँवरू' नाम का था और उसकी पहलेवाली पत्नी का नाम 'मीना' था। मुल्ला दाऊद ने इस कहानी को किसी मलिक नाथन के कहने से लिखा था और उसे उक्त चदा से पूरी सवेदना भी थी जिसे उसके अनुसार एक बार साँप ने डँस लिया था। उसका कहना है—'हिरदै जात सो चदा रानी। साँप डसै हूँ सोइ वखानी।' और जान पड़ता है कि यह घटना, लोरिक के साथ चदा के भागते समय की है।[१४]

परतु 'गवासी' की पक्तियो को मिलाकर पढ़ने से प्रतीत होता है कि इसकी मसनवी की कहानी कुछ भिन्न है। यहाँ पर चदा किसी नगर के वादशाह की पुत्री है जिसका नाम सभवत 'वाला' अथवा 'माला' कुँवर है। इसके सिवाय जिस समय चदा को चोरी से लेकर लोरिक भाग निकलता है और वादशाह को इस वात की सूचना दी जाती है तो वह यहाँ परकहता है "अच्छा हुआ मेरी वाधा टल गई। लोरिक के घर उसकी एक परम सुन्दरी नारी है जिसे मैं प्यार करता हूँ और अव उसे किसी कुटनी द्वारा पालने में मुझे सुविधा हो सकेगी।"[१५] इस

१४. जर्नल ऑफ दि बिहार सोसायटी, भा० ३९, सन् १९५३ ई०, पृ० १२।
१५. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० २८८-९।

कहानी में न तो कही चंदा के किसी पूर्व पति वावन की चर्चा है, न उसके भागते समय के विघ्नो का ही वर्णन है। लोरिक की पहली पत्नी मैना के पतिव्रता होने की ओर कुछ सकेत यहाँ पर अवश्य मिलता है। चंदा से यहाँ पर लोरिक स्वयं कहता है—

'यो सुनकर कहा मेरे घर नार है। ओ सतवंत नार वाईमान औतार है।
के साहव मुजे चंदा होर सूर का। मेरे घर में शोला है कोहतूर का।
इस्मे पाक उसका कहूँ मै टुक एक। पतिव्रत मैना सो है नाँव नेक।[१६]

अपनी उस पत्नी को छोड़कर आने के लिए लोरिक 'चदायन' वाली कहानी मे भी, एक वार पछताता है और कहता है कि इसी कारण मुझे कप्ट मिलने लगे हैं।[१७] लोरिक दोनो कहानियों के अन्तर्गत जाति का ग्वाला ही है तथा 'गोरू' चराने का काम भी करता है। परतु गवासी की मसनवी में इसकी कथा को कही-कही वह आध्यात्मिक रूप भी दिया गया नही जान पडता जो उत्तरी भारत की सूफी प्रेमगाथाओ की विशेपता है और जिसकी ओर किये गए कुछ न कुछ सकेत 'चदायन' की अधूरी प्रति में भी हमें मिल जाते है।

गवासी ने अपनी 'चदा व लोरक' मसनवी को किस फारसी रचना से अनुवादित किया है इसका पता हाशमी साहव नही देते। स्वय यह कवि भी इस वात की ओर कहीं सकेत करता नही दीख पड़ता। इसके रचना-काल के विपय में किये गए हाशमी साहव के अनुमान—"इसकी तसनीफ हि० स० १०३५ के पहले हुई होगी।"[१८] से केवल यही जान पडता है कि यह समय 'चदायन' से लगभग २५० वर्ष पीछे का होगा, स्वयं मुल्ला दाऊद की कतिपय पक्तियो से ध्वनित होता है कि लोरिक एवं चंदा की कथा उनके समय से भी प्रसिद्ध रही होगी। मलिक नाथन के संभवत. सुझाव देने पर ही उन्होने स्वयं भी अपनी प्रेमगाथा की रचना की थी। उनका कहना है—

१६. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० २८७।
१७. जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, भा० ३९, १९५३ ई०, पृ० १०।
१८. दकन में उर्दू, पृ० ७८।

वह वस्तुत 'चदायन' की कहानी से अभिन्न भी होगा, यह कहने का हमारे पास कोई साधन नही है। 'चदायन' की कोई भी पूरी प्रति अभी तक उपलब्ध नही हो सकी है, इस कारण यह कहना कठिन है कि उसकी-कथा का मूल रूप क्या है। अब तक इसकी एक से अधिक अधूरी प्रतियाँ ही मिल सकी है। इसकी किसी एक पूरी प्रति का कही विदेश से पाया जाना कहा जाता है जो वास्तव मे देखने पर सपूर्ण कहलाने योग्य नही है। पटना के प्राध्यापक एस० एच० अस्करी साहब को जो अधूरी प्रति मिली है उसमे पाये जाने वाले कतिपय स्थलो के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उसका नायक लोरिक जाति से अहीर है और वह गौर नगर का निवासी है, चदा सहदेव नामक भर्र की पुत्री है और वह बावन से व्याही गई रहती है। उसे यह बावन के घर से लाती है और उसे अपनी पत्नी बना लेता है तथा उसके ऐसा यत्न करते समय उसे मार्ग मे अनेक प्रकार की बाधाओ का सामना भी करना पड़ता है। उससे इतना और भी सकेत मिल जाता है कि लोरिक का एक भाई 'कुँवरू' नाम का था और उसकी पहले वाली पत्नी का नाम 'मीना' था। मुल्ला दाऊद ने इस कहानी को किसी मलिक नाथन के कहने से लिखा था और उसे उक्त चदा से पूरी सवेदना भी थी जिसे उसके अनुसार एक बार साँप ने डँस लिया था। उसका कहना है—'हिरदै जात सो चदा रानी। साँप डसै हूँ सोइ बखानी।' और जान पड़ता है कि यह घटना, लोरिक के साथ चंदा के भागते समय की है।[१४]

परतु 'गवासी' की पक्तियो को मिलाकर पढ़ने से प्रतीत होता है कि इसकी मसनवी की कहानी कुछ भिन्न है। यहाँ पर चदा किसी नगर के बादशाह की पुत्री है जिसका नाम संभवत. 'वाला' अथवा 'माला' कुँवर है। इसके सिवाय जिस समय चदा को चोरी से लेकर लोरिक भाग निकलता है और बादशाह को इस बात की सूचना दी जाती है तो वह यहाँ पर कहता है "अच्छा हुआ मेरी बाधा टल गई। लोरिक के घर उसकी एक परम सुन्दरी नारी है जिसे मैं प्यार करता हूँ और अब उसे किसी कुटनी द्वारा पालने में मुझे सुविधा हो सकेगी।"[१५] इस

१४. जर्नल ऑफ दि बिहार सोसायटी, भा० ३९, सन् १९५३ ई०, पृ० १२।
१५. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० २८८-९।

कहानी में न तो कही चदा के किसी पूर्व पति बावन की चर्चा है, न उसके भागते समय के विघ्नो का ही वर्णन है। लोरिक की पहली पत्नी मैना के पतिव्रता होने की ओर कुछ सकेत यहाँ पर अवश्य मिलता है। चदा से यहाँ पर लोरिक स्वयं कहता है—

'यो सुनकर कहा मेरे घर नार है। ओ सतवंत नार वाईमान औतार है।
के साहब मुजे चंदा होर सूर का। मेरे घर में शोला है कोहतूर का।
इस्म पाक उसका कहूँ मै टुक एक। पतिव्रत मैना सो है नाँव नेक। [१६]

अपनी उस पत्नी को छोड़कर आने के लिए लोरिक 'चदायन' वाली कहानी में भी, एक वार पछताता है और कहता है कि इसी कारण मुझे कष्ट मिलने लगे हैं। [१७]लोरिक दोनों कहानियो के अन्तर्गत जाति का ग्वाला ही है तथा 'गोरू' चराने का काम भी करता है। परतु गवासी की मसनवी में इसकी कथा को कही-कही वह आध्यात्मिक रूप भी दिया गया नही जान पडता जो उत्तरी भारत की सूफी प्रेमगाथाओ की विशेपता है और जिसकी ओर किये गए कुछ न कुछ सकेत 'चदायन' की अधूरी प्रति में भी हमें मिल जाते है।

गवासी ने अपनी 'चंदा व लोरक' मसनवी को किस फारसी रचना से अनुवादित किया है इसका पता हाशमी साहब नही देते। स्वय यह कवि भी इस वात की ओर कहीं सकेत करता नही दीख पड़ता। इसके रचना-काल के विपय में किये गए हाशमी साहब के अनुमान—"इसकी तसनीफ हि० स० १०३५ के पहले हुई होगी।"[१८] से केवल यही जान पड़ता है कि यह समय 'चदायन' से लगभग २५० वर्ष पीछे का होगा, स्वयं मुल्ला दाऊद की कतिपय पक्तियों से ध्वनित होता है कि लोरिक एव चदा की कथा उनके समय से भी प्रसिद्ध रही होगी। मलिक नाथन के सभवत सुझाव देने पर ही उन्होंने स्वयं भी अपनी प्रेमगाथा की रचना की थी। उनका कहना है—

---

१६. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० २८७।

१७. जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, भा० ३९, १९५३ ई०, पृ० १०।

१८. दकन में उर्दू, पृ० ७८।

तोर कहा मै यहि खँड कांऊ। कथा कब की लोक सुनाऊँ।
मलिक नथन सुन बोल हमारी। सुनहे कान देइ हिय कनैमारी। [१९] (?)

इघर की खोजो से पता चलता है कि इस कथा के विभिन्न रूप थे जो कई बोलियो की लोकगाथाओ मे अभी तक प्रचलित रहते आए है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढी आदि वहुत सी बोलियों मे पायी जाने वाली ऐसी रचनाओ के कुछ अश तो प्रकाशित भी हो चुके है। इसके किसी एक रूप का उदाहरण हमे वंगला भाषा मे उपलब्ध अलाओल कवि की रचना 'लोर चन्द्राणी' एवं दौलत काज़ी की 'सती मयनावती' मे भी मिलता है जिसके लिए कहा गया है कि वह 'ठेठा चौपाई पर दोहा' मे कही जानेवाली कहानी के आधार पर निर्मित की गई है।[२०] इन उपलब्ध रचनाओ की तुलना कर लेने पर इतना और भी अनुमान किया जा सकता है कि लोरिक एव चंदा की इस प्रेमकहानी के आधार पर लिखी गई मसनवियों अथवा प्रेमगाथाओ के कम से कम, दो रूप साधारणत: मिलते हैं जिनमे से एक मे लोरिक एव चदा के ही सम्बध की बाते विशेष रूप से कही गई है तथा दूसरे मे, इसी प्रकार लोरिक एव मैना विषयक बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रथम वर्ग की रचनाएँ कुछ अधिक विस्तृत हैं और उनमें लोरिक एवं चदा के भागते समय की विविध वाधाओ का सागोपांग वर्णन मिलता है, जहाँ दूसरे में लोरिक की पूर्व पत्नी मैना के सतीत्व पालन का प्रसग अपेक्षाकृत कम विस्तार के साथ आता है।

यहाँ पर इस सम्वध मे, एक यह वात भी उल्लेखनीय है कि 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' नामक पुस्तक मे जहाँ उसके ४६८ पृष्ठों के अतर्गत दक्खिनी हिंदी के अनेक पद्य के उदाहरण सगृहीत है, वहाँ उसके पृ० ३७३ से लेकर पृ० ३७८ तक एक रचना 'मसनवी किस्सा मैना सतवंती' नाम से दी गई मिलती है जिसके कवि के विपय मे 'अज्ञात लेखक' लिखा दीख पड़ता है। परतु यदि इसकी पंक्तियों को उपर्युक्त पृ० २८६ से लेकर पृ० २८९ तक छपी मसनवी की पक्तियो के साथ

१९. जर्नल ऑफ दि विहार रिसर्च सोसायटी, १९५३, पृ० १२।
२०. सुकुमार सेन : वागला साहित्येर इतिहास, पृ० ५६६।

पढ़ते हैं तो इन दोनो रचनाओ में विचित्र साम्य भी जान पड़ता है। इन दोनों की बहुत-सी पंक्तियाँ लगभग ज्यो की त्यों लिख ली गई प्रतीत होती हैं और ऐसा लगता है जैसे उनमे केवल कुछ पाठभेद का ही अन्तर हो, जैसे—

'मसनवी ग़वासी दकनी'	'मसनवी किस्सा मैना सतवंती'
के एक शहर का एक था बादशाह	के यक शहर में था बड़ा ओके शाह
जहाँगीर आलम में था शाहंशाह	जहाँगीर आलम अथा शहंशाह
बड़ा मेहरवाँ अदल और शहरयार	सचें अदल मे मेहरवाँ शहरयार
इनको नाम उसका सो वाला कुँअर	नेको नाम उसका सो वाला कुँअर
उसे कई विलायत भौत शहर थे	उसे सब विलायत बहुत शहर थे
खड़ी हो इशारत सूं कही नेक जात	खड़े हो इशारत किये उस सँगात
कैतीहू तुजे सरफराजी की बात	किये हों तुजे सरफ़राजी की बात
यो सुन बात गवाल तसलीमकर	यों सुन बात कूँ तस्लीम कर
कहा मुजपो करना महर में के नजर	कहा मुजपो करना करम की नजर
कही सुन तू ग्वाल ऐ जान यार	कहे सुनके ऐ आशिके जाने यार
के गोरू के पीछे अहै ख्वार जार	के होता है तूँ गोरवा स्याने ख्वार
मेरे पास धन माल हैं ले मेहता	मेरे पास धन माल है होर मता
तुजे देऊंगी मैं ओ सारा जेता	तुजे देऊँगी मै सारा जता
वले माल सारा इहाँते सलूक	वले माल धन सारा उलीच कर
हमें होर नहीं, मिलको जाएँ मलूक	हमें होर तुमें जावें एक मुल्क पर
के साहव मुजे चांदा होर सूर का	न हाजत मुजे चाँद होर सूर का
मेरे घर में शोला है कोहतूर का	मेरे घर में शोला है कोहेतूर का
इस्मपाक उसका कहूँ में टुक एक	इस्मे पाक उसका सो है नाँव नेक
पतिव्रत मैना सोहै नांव नेक	अपने व्रत मैना सो नाव नेक
उसे छोड़ जाना तो वाजिव नहीं	उसे छोड़ जाना तो वाजिव नहीं
मैं भूल माल........ मुनासिव नहीं	मैं किस घात सेती लजाना नहीं
यो सुन बात चंद कहै विस्तार	यों सुन बात चदा कहे उस्तवार
आयी हो खुद तुज कूँ करता है ख्वार	अपै हो खुदा तुजको करता है ख्वार

तू चंदा मै लोरक हूँ नौकर तेरा
ले चंदा कूँ चोरी से बाहर हुवा
सो ओ गलवला जग में जाहिर हुवा
सो राजा वहाँ का बैठ्या तख्त पर
खबरदार उसकी ले जाये खबर
तेरी पाकदामन कूँ लोरक गँवार
बड़ा ढीठ होकर किया बदसिगाल
सुन्याँ सोचा राजा हँस्या खिलखिला
कहा मेरे जिवका यों तोरचा सिला
कहा अपने लोगों कूँ सूँ खोल बात
गया चोरी कर चोर गवाल जात
सो घर उसके मकबूल यक नार है
भोत दिन सूँ उस पर मेरा प्यार है

तू चंदा मे लोरक हूँ कुकर तेरा
लिये चंदा कूँ चोरी से बाहर हुआ
सो यो गलवला जग में जाहिर हुआ
सो राजा वहाँ का बैठा तख्त पर
खबरदार उसकूँ दिये जा खबर
तेरे पाक दामन कूँ लोरक गवाल
बड़ा ढीठ होकर गया ले निकाल
सुन्या बात राजा हँसा खिलखिला
कहा मेरे दिल का टूट्या बिल्वला
कहा अपने लोगों कूँ मुँह खोल बात
क्या चोरी करे चोर गवाल जात
सो घर उसके मकबूल एक नार है
भोत दिन सूँ उसपे मेरा प्यार है

'मसनवी गवासी दक्कनी' में इसके अनन्तर उस राजा द्वारा अपने-लोगो से किसी कुटनी का बुलाया जाना तथा उससे मैना को बहकाकर लेने का प्रस्ताव करना और उसका इसे स्वीकार करना तक कहा गया है, किंतु 'मसनवी किस्सा सतवती' मे यह बात नही आती। फिर भी इन दोनो पर विचार करने से ऐसा लगता है जैसे या तो ऊपर दिये गए उदाहरण किसी एक ही रचना की पाठभेद सूचक पंक्तियाँ है अथवा इनमे से किसी भी एक के रचयिता ने दूसरी रचना को अपने सामने ही रखकर लिखा है।

कुछ दिन हुए पटना से प्रकाशित होनेवाली 'अवंतिका' पत्रिका मे 'साधन का मैनासत' शीर्षक एक 'नोट' छपा था जिसके लेखक डॉ० माताप्रसाद गुप्त है और जिसमें किसी 'साधन' कवि द्वारा रचित 'मैनासत' के विषय मे कुछ अनुमान किया गया दीख पड़ता है। डॉ० गुप्त ने इस सम्बन्ध मे नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित १९०२ ई० के हिंदी हस्तलिखित पुस्तको के खोज विवरण मे दी गई सूचना, किसी अज्ञात कवि की रचना 'मैनासत' और पटना के प्राध्यापक एस० एच० अस्करी द्वारा 'बिहार रिसर्च सोसायटी जर्नल' (मार्च-जून १९५३)

में उल्लिखित 'मैना की एक अवधी कहानी' (जिसका लेखक 'साधन' है) की चर्चा की है तथा चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' में पाये जानेवाले 'मैनासत प्रसंग' के साथ इन दोनों का सम्बंध निर्धारित करने का भी यत्न किया है। डॉ० गुप्त का अनुमान है कि ये तीनों ही रचनाएँ साधन की कृति के रूपान्तर है जो स० १५६१ के आसपास अथवा उसके पूर्व की लिखी हो सकती है। परतु डॉ० गुप्त ने वहाँ पर उक्त रचना के कथानक तथा उसके मूलस्रोत पर भी विचार नही किया है। उन्होंने इस सम्बंध मे केवल प्रो० अस्करी की कुछ पक्तियो को उद्धृत कर दिया है जिससे पता चलता है कि उस रचना का किसी मैना एव मालिन की कहानी से सम्बध है।[२१] प्रो० अस्करी ने भी जो पंक्तियाँ अपने लेख मे उस कहानी से लेकर दी है उनमें से एकाध में मैना वा मीना का परिचय 'मीनारानी' तथा 'मीनां जहाँ सिंघासन बैठें' जैसे शब्दो द्वारा दिया गया दीख पड़ता है[२२] जिससे स्पष्ट नही हो पाता है कि वह लोरिक की पत्नी ही थी वा नही। जब तक पूरी कथा के विचार से इन रचनाओं की तुलना नही की जाती तब तक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि दोनो की नायिकाओ मे नामसाम्य होने के अतिरिक्त इतना और भी स्पष्ट है कि उनमे पातिव्रत रक्षा का प्रतिपादन भी एक ही ढग से किया गया है।

'किस्सा मैना सतवती' के रचयिता के सम्बध मे अनुमान किया गया है कि वह सभवत. 'गवासी' ही रहा होगा और इसके लिए उसके अत की दो पक्तियाँ भी उद्धृत की गई है जो सयोगवश हाशमी साहब द्वारा 'चदा और लोरक' मसनवी से ली गई पंक्तियों में भी दीख पडती है।[२३] परंतु उपलब्ध सामग्री के आधार

---

२१. अवंतिका, पृ० ७९।

२२. जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, भा० ३९, अंक १-२, १९५३ ई०, पृ० २८।

२३. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० ४८५। पंक्तियाँ इस प्रकार है—

'ग़वासी यों करना करम की नजर।
दुआ हक सो मंगना मेरे हक उपर॥'—दकन में उर्दू, पृ० ८७।

पर हमे इतना और भी अनुमान कर लेने के लिए कोई साधन नही कि इस रचना का रूप किसी सूफी प्रेमगाथा का था अथवा यह केवल किसी शुद्ध प्रेमगाथा की परपरा के ही अनुसार निर्मित की गई थी। यदि इसका रचना-काल स० १६८२ के पूर्व का भी मान लिया जाय, उस दशा मे भी यह गवासी की कृति होने के नाते उसके जीवन-काल से पहले की रची गई नही कही जा सकती और इसी कारण, यह साधन कवि की 'मैनासत' के पीछे की ही ठहरती है। अतएव हो सकता है कि मैना वा मीना के सतीत्व पालन की कहानी इन दोनो कवियों के वहुत पहले से और सभवतः 'चदायन' के रचयिता मुल्ला दाऊद के समय से भी पूर्व से किसी न किसी रूप मे चली आती रही होगी और यह भी असंभव नही कि यह किसी समय लोरिक व चदा की कथा से स्वतत्र भी रही होगी।

गोलकुडा की कुतुबशाही सल्तनत की ही भाँति बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की छत्रछाया मे भी प्रेमगाथाएँ लिखी गई थी। वहाँ के ऐसे सर्वप्रथम कवि का नाम 'मुकीमी' दिया गया मिलता है जिसकी रचना 'चंदर बदन व महियार' नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि 'मुकीमी' ने अपनी प्रस्तावना मे गवासी का स्मरण किसी 'उस्ताद की तरह' किया है और उसने मसनवी को उसके 'तुतव' मे रचा है।[२४] 'चदर वदन व महियार' की रचना का "मकसद मजहवे इस्लाम की अजमत ज़ाहिर करना" भी बतलाया गया है। यद्यपि उसके किसी अश के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि यह साधारण सूफ़ी कवियो की वैसी प्रेमगाथाओ से भी प्रभावित है। इसकी कहानी को सक्षेप मे इस प्रकार कह सकते हैं—कोई महियार नामक युवा पुरुष चदर पटन के राजा की लड़की चंदर वदन का नाम सुनकर उस पर आसक्त हो जाता है और उसकी खोज मे चंदर पटन पहुँचकर उसे देख भी लेता है तथा उसके पैरों तक पर गिर पड़ता है। परंतु वह इस वात से कुछ प्रभावित होती हुई भी, अपने धर्म के कारण उसे ठुकराकर चल देती है जिससे महियार की दशा एक पागल की सी हो जाती है। उसे वीजा-

---

२४. अब्दुल कादिर सरवरी : उर्दू मसनवी का इर्तका, हैदराबाद, १९४० ई०, पृ० ४८-५०।

नगर के राजा से इस सम्बंध मे कुछ आश्वासन अवश्य मिलता है, किंतु लड़की के वाप के यहाँ उसकी कोई सुनवायी नही होती। फलतः माहियार अपने प्राणों से हाथ धो वैठता है और उसका जनाजा चंदर वदन के महल की ओर से ही निकलता है। परंतु वह किसी कारण आगे नही वढ पाता जिसका समाचार सुनकर चंदर वदन वहुत प्रभावित हो जाती है। वह नहा-धोकर कही कोने में जा सो रहती है और मर जाती है जिस पर जनाज़ा भी आगे वढ़ता है और जव महियार का शव कब्र में रखा जाता है तो वहाँ किसी प्रकार चंदर वदन का भी शव पहुँच जाता है। 'चदर वदन व माहियार' की रचना के समय वीजापुर का सुल्तान इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय (स० १६३६–८४) था, अथवा अभी कुछ ही पहले मर चुका था। वह एक योग्य शासक था और स्वयं भी एक निपुण कवि और लेखक कहला कर प्रसिद्ध है। कहते है कि उसके शासनकाल मे पहले 'अदवी मसनवियाँ' अर्थात् शुद्ध उद्देश्य से रची गई प्रेमगाथाएँ ही दीख पड़ती है। नुसरती की मसनवी 'गुलशने इश्क' (सं० १७१४) तथा हाशमी की 'युसुफ जुलेखा' (स० १७४४) का निर्माण उसके अनन्तर क्रमश. अली आदिलशाह तथा सिकन्दर आदिलशाह की सल्तनतो के समय में हुआ। मुकीमी की 'चदर वदन व माहियार' के आधार पर फिर वीजापुर के ही किसी 'आतिशी' नामक कवि ने एक फारसी मसनवी लिखी और पीछे इस रचना का एक दक्खिनी हिंदी अनुवाद किसी 'वुलवुल' नामक कवि द्वारा किया गया जो पहली मसनवी से कही विस्तृत तथा विशाल है। परतु इनमें से किसी की भी कोई प्रति उपलब्ध नही जिसके आधार पर उसके ऊपर पड़े किसी सूफी विचारधारा के प्रभाव का समुचित निर्णय किया जा सके।

नुसरती की रचना 'गुलशने इश्क' का विशेष महत्व इस वात के कारण भी समझा जाता है कि उसमें आयी हुई कथा का कुछ न कुछ साम्य उस कथानक के साथ भी ढूंढ़ा जा सकता है जो हिंदी के सूफी कवि शेख मझन की प्रेमगाथा 'मधुमालती' का आधारस्वरूप है। स्वय नुसरती का कहना है कि उसके एक मित्र नवी इब्न अब्दुस्समद ने उसे इसके लिखने की प्रेरणा दी थी जिससे अनुमान किया जा सकता है कि जिस प्रकार मुल्ला दाऊद से कहकर मलिक नाथन ने उससे 'चंदा-

यन' की प्रेमगाथा लिखवायी थी। सभवत उसी प्रकार अब्दुस्समद ने भी नुसरती से 'गुलशने इश्क' लिखने के लिए कहा होगा और हो सकता है कि इसकी भी मूलकथा उसी की भाँति पुरानी रही होगी। डॉ० अब्दुल हक का कथन है कि शेख़ मझन की रचना 'मधुमालती' का प्रसग किसी फारसी मसनवी किस्सा 'कुँवर मनोहर व मदमालत' मे आया है जो सन् १०५९ हि० अर्थात् स० १७०५ मे लिखी गई थी, किंतु जिसके रचयिता का नाम ज्ञात नही है।[२४] उसके कवि ने डॉ० हक के अनुसार, 'अपने किस्से की वुनियाद उसी पर रखी है', किंतु उन्होने इस सम्बध मे इससे अधिक नही कहा है। उन्होने एक अन्य फारसी मसनवी का भी उल्लेख किया है जो 'महर व माह' नाम की है जो और सन् १०६५ हि० अर्थात् सं० १७११ मे लिखी गई थी। उनका अनुमान है कि 'महर व माह' के रचयिता आकिन खाँ को उसका किस्सा 'दकन' ही मे मिला होगा और उसने 'मनोहर' को 'महर' और 'मधुमालती' को 'माह' कर दिया होगा। डॉ० हक को शेख़ मझन की रचना 'मधुमालती' देखने को नही मिल सकी थी, क्योकि वह तव तक प्रकाशित भी नही हो पाई थी। इसलिए कथानक विषेयक समानता का उल्लेख उन्होने केवल अनुमान के अनुसार किया है। 'गुलशने इश्क' के अनन्तर उसकी कहानी के आधार पर किसी हिसार के हिसामुद्दीन ने भी एक फारसी मसनवी 'हुस्न व इश्क' की रचना सन् १०८१ हि० अर्थात् स० १७२७ में की। परंतु कहा जाता है कि नुसरती की कृति इन सभी से कही विस्तृत और विशाल है। नुसरती ने उसमें कुछ नये प्रसग भी जोड़ दिए है। वास्तव मे, 'मधुमालती' के साथ इसकी तुलना करने पर भी पता चलता है कि इन दोनो के बीच कई वातों मे अन्तर आ गया है। फिर भी यह अन्तर उतना नही है जितना इसे चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' अथवा जान कवि की 'मधुकर मालती' के साथ पढ़ने से जान पडता है, क्योकि इन दोनो रचनाओ की आधारभूत कहानी का रूप किसी और ही प्रकार का है तथा उससे वहुत भिन्न है। उदाहरण के लिए 'मधुमालती' के

---

२४. डॉ० मौलवी अब्दुल हक साहब : नुसरती, अंजुमनतरक्किए उर्दू हिंद), नई देहली, पृ० १७-१९।

आरंभ में ही जो तपा का प्रसग आता है उसमे राजा सूरजभान तपा के निकट बारह वर्षो तक उसकी सेवा मे रह जाता है और तब कही उससे बातचीत होती है जहाँ 'गुलशने इश्क' में जब यह फकीर राजा विक्रम के द्वार पर जाता है तो वह भोजन करने बैठता रहता है तथा फकीर की 'सदा' या आवाज देने पर वह अपनी थाली लेकर उसे देने जाता है जिसे वह उसके नि सतान रहने के कारण, अस्वीकार कर देता है। फिर 'मधुमालती' का तपा जहाँ राजा को वही 'जेवनार-पिंड' दे देता है, जिसे खाकर उसकी रानी गर्भवती होती है, वहाँ 'गुलशने इश्क' के फकीर को वह जगलो मे ढूँढ़ता है और तब कही कुछ परियो की सहायता से वह उसे पाता है तथा उसके कहने पर किसी वृक्ष का फल तोडकर अपने घर लाता और अपनी रानी को खिलाता है जिसे इसके कारण गर्भ रहता है, इत्यादि। इसके सिवाय 'गुलशने इश्क' मे कुछ अपनी रचना-शैली की भी विशेपताएँ हैं जो उसकी फारसी काव्य-परपरा के कारण हो सकती है और ये स्वभावत 'मधुमालती' में नही पायी जाती। उदाहरण के लिए 'गुलशने इश्क' के अतर्गत प्रत्येक 'बाव' या सर्ग के पहले एक ऐसा 'शेर' लिखा मिलता है जिससे उसके प्रसगो का स्पप्ट निर्देश हो जाता है। इसी प्रकार उनमे से प्राय. प्रत्येक के आरभ मे कोई न कोई प्राकृतिक 'वस्तु' का चित्रण अथवा प्रस्तुत वातावरण का कोई विस्तृत वर्णन भी आ जाता है जिनका 'मधुमालती' मे वहाँ अभाव-सा है। अतएव, इन दोनो रचनाओ का मूलस्रोत सभवत. एक ही होने पर भी इनमे विवरणो के रूप एव कृति की रचना-शैली मे भिन्नता आ गई है।

मझन की 'मधुमालती' एव 'गुलशने इश्क' का कथानक-चक्र एक ही जान पड़ता है, जहाँ चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' एव जान कवि की 'मधुकर मालती' का उससे नितान्त भिन्न दीख पडता है। इसी प्रकार संभव है कि गुजराती, राजस्थानी तथा बगला आदि मे उपलब्ध होनेवाली इस नाम की विविध कहानियो में से कुछ की कथावस्तु इन दोनो से भी भिन्न हो। यो तो नामसाम्य के आधार पर कभी-कभी भवभूति के प्रसिद्ध नाटक 'मालती माधव' के भी वर्ण्यविषय की चर्चा इस प्रसग में कर दी जाती है और यह समझा जाता है कि उसकी कथा का ही एक रूप 'मधुमालती' का भी प्रेरणास्रोत है। परतु इस प्रकार का परिणाम निकालने

के पहले इस सम्बंध मे अभी और भी खोज अपेक्षित हो सकती है। सारी सामग्रियों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनके समुचित विश्लेषण और विवेचन के आधार पर उनके वर्गीकरण एवं विकास निर्देशन की आवश्यकता पड़ सकती है। शेख मंझन ने तो अपनी रचना मे इसकी कथा का मूलस्रोत बतलाते हुए कहा है कि वह द्वापर युग की घटना है जिसे कलियुग के कवियों ने भाषा में कह दिया है,[२५] किंतु उनके इतना कह देने से ही हमारी तद्विषयक जिज्ञासा की तृप्ति नही होती। इससे केवल इतना संकेत मिलता है कि संभव है, इस कथा का कोई न कोई रूप हमे प्राचीन पौराणिक वा कथात्मक साहित्य मे भी मिल जाय।

शेख मंझन की 'मधुमालती' अथवा नुसरती की 'गुलशने इश्क़' मसनवी के मूलभूत कथानक-चक्र की चर्चा करते समय हमारा ध्यान अनेक अन्य ऐसी प्रेम-कहानियों की कथावस्तु की ओर भी चला जाता है जिसका अध्ययन भी कदाचित् इससे कम रोचक न होगा। जायसी की प्रेमगाथा 'पद्मावत' की कथावस्तु भी उन सारी प्रेमकहानियों का वर्ण्य विषय नही जिनका नामसास्य उसके साथ पाया जाता है। उदाहरण के लिए जो पद्मावती की कथा 'कल्कि पुराण' मे आती है उसके प्रायः सभी पात्र पौराणिक है और उनका जायसी की रचना के पात्रो जैसा कोई ऐतिहासिक पता भी नही दिया जा सकता तथा इन दोनों कथाओं के स्वरूप एव क्रमविकास मे भी पर्याप्त अन्तर है। इसी प्रकार लब्धोदय कवि के 'पद्मिनीचरित्र', हेमरतन की 'पद्मिनी चउपई' तथा जटमल की 'गोरा बादल री बात' जैसी रचनाओ के तुलनात्मक अध्ययन से भी पता चल सकता है कि उनका एक ही सा ऐतिहासिक आधार होने पर भी, उनमे कितना अन्तर आ जाया करता है। दक्खिनी हिंदी के कवि गुलाम अली ने तथा वली वेलूरी ने अपनी अपनी रचनाओं, क्रमशः 'पद्मा-वत' एवं 'रतन व पदम' का निर्माण जायसी की प्रसिद्ध प्रेमगाथा के आधार पर किया है। इसी प्रकार एक अन्य कवि इशरती के लिए भी कहा जाता है कि उसने

---

२५. 'आदि कथा द्वापर मो भई। कलिजुग मो भाखा जो गाई॥'—मंझन कृत 'मधु मालती', हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५७ ई०, पृ० १५।

फ़ारसी मे तथा वैसे ही वंगला कवि अलाओल ने वंगला मे इसके रूपान्तर किय हैं। परतु इन कृतियो के उपलब्ध विवरणो से यह स्पष्ट होते देर नही लगती कि इन सभी कवियो ने जायसी का अनुसरण अक्षरशः नही किया है जिसका एक परिणाम यह भी हुआ है कि इनकी न केवल रचना-शैली प्रत्युत प्रसगवैविध्य के कारण भी, उनमे कुछ न कुछ विशेषता अवश्य आ गई है।

दक्खिनी हिंदी के अधिकांश प्रेमाख्यान इस प्रकार, या तो किसी न किसी फ़ारसी मसनवी के अनुवाद हैं अथवा किसी अन्य प्रसिद्ध एव प्रचलित प्रेमगाथा के आधार पर लिखी गई मसनवी के रूप में उपलब्ध होते हैं। स्वतत्र रूप से रचित मसनवियो की सख्या अधिक नहीं। इब्न निशाती की मसनवी 'फूलवन' के लिए कहा जाता है कि उसकी कथा कुछ अशो मे मौलिक है, किंतु वह भी वस्तुतः 'अलिफ लैला' के ही आदर्श पर लिखी गई है जो स्वय भी किसी प्रचीन शामी परपरा का अनुसरण करने वाली रचना है। निज़ामी की 'कदम राव व पदम' के मूलस्रोत का पता नही चलता, क्योकि अभी तक उसकी पूरी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है। मुल्ला वजही की केवल 'कुतुब मुश्तरी' के ही विषय मे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसकी कथा किसी अन्य रचना पर आश्रित नही, उसका प्रत्यक्ष पात्रो से सम्बध भी है। मुल्ला वज़ही की 'सवरस' के आधार पर पीछे मुज़रमी ने अपनी 'गुलशने हुस्न व दिल' नामक रचना सन् १०९९ हि० (स० १७४८) मे लिखी। इसी प्रकार हाशमी की 'यूसुफ जुलेखा' की भाँति अमीन ने भी अपनी एक रचना उसी नाम से हि० ११०९ अर्थात् सन् १७४४ में प्रस्तुत की थी। 'यूसुफ जुलेखा' शामी परपरा की एक पुरानी पौराणिक प्रेम-कहानी के आधार पर लिखी गई थी। अहमद की 'लैला मजनूँ' भी एक ऐसी ही अन्य कथा पर आश्रित है। जहाँ तक पता चलता है दक्खिनी हिंदी की सूफी प्रेमगाथाओ मे लोकगाथाओ का अनुसरण कम किया गया है। जहाँ है, वहाँ भी किसी कृति के ही माध्यम से है जैसा पूर्वोल्लिखित 'चंदा व लोरक' एव 'किस्सा मैना सतवती' से भी प्रकट होता है।

इस प्रसग में यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि उत्तरी भारत के सूफी कवियो ने अपनी हिंदी प्रेमगाथाओ का निर्माण आरभ कर दिया था और उन्होने

भारतीय प्रेमगाथाओ की प्रचलित परपरा को न्यूनाधिक अपना भी ले रखा था। फिर भी दक्खिनी हिंदी के प्रथम मसनवी रचयिता ने उनका अनुसरण नही किया, प्रत्युत उधर ध्यान न देते हुए फारसी मसनवियो को ही अपना आदर्श बनाया तथा इस प्रकार उन्होने अपन पीछे आने वालो के लिए मार्ग-प्रदर्शन करके ऐसी भावी उर्दू रचनाओ की नयी वुनियाद भी कायम कर दी। फलत ऐसी मसनवियो मे न केवल शामी परपरा की रक्षा एव प्रचार का प्रयास किया गया, अपितु इनमे कभी हिन्दू समाज एव सस्कृति का सफल चित्रण भी नही किया जा सका, न उन्हे कोई महत्व ही मिला। जिन, परी, देव, शाही दरवार, दरवेश एव खिज्रखाँ विपयक प्रसगो को, कभी-कभी अनावश्यक होने पर भी, स्थान दिया जाने लगा और विदेशी पशु-पक्षी तक भी आने लगे। इन मसनवियों के रचयिता प्राय. मुसलिम सुलतानो की छत्रछाया मे रहा करते थे जिस कारण, उनके उपर्युक्त वर्णनो की प्रचुरता दीख पडने लगी और फारसी एवं अरबी की वहॉ विशेष प्रतिप्ठा होने के कारण इन दोनो भाषाओ की शव्दावली को भी अधिक महत्व दिया जाने लगा। फारसी की प्रसिद्ध मसनवी रचना-शैली का लगभग अक्षरशः अनुकरण किया जाने लगा और उसका ही आदर्श प्राय. उन-सभी प्रेमगाथाओ के लिए भी उपयुक्त समझा जाने लगा जिनका उद्देश्य केवल विशुद्ध प्रेम का प्रचार मात्र ही रहा करता था। इन मसनवियो के अतर्गत फारसी तथा कभी-कभी अरबी बह्रो (छदो) को ही अपनाया गया। ऐसी छोटी सी छोटी रचनाओ मे भी बराबर केवल उन्ही वातो की ओर विशेष ध्यान दिया गया जो अधिकतर मुस्लिम सामाजिक वातावरण के अनुकूल थी। निजामी जैसे पहले के कुछ कवियो ने अपनी भाषा मे अपने यहाँ की ठेठ प्रचलित भापा के भी प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किये थे। परतु उनके पीछे आनेवाले इस वात मे क्रमश अधिकाधिक ढीलापन दिखलाते गए और फ़ारसी एव अरवी शव्दो को अपनाते भी चले आए।

नामानुक्रमणी